भगवान् गौतम बुद्ध

भदन्त बोधानन्द महास्थविर

बुद्ध विहार
लखनऊ

विषय-सूची

दर्शन, यशोधरा, भ्राता नन्द, पुत्र राहुल, अनुरुद्ध आनन्द और उपाली आदि का सन्यास, महाकाश्यप की दीक्षा, महाकात्यायन, वच्छगोत्र, आश्वलायन, कर्मवाद, संघ नियम की घोषणा, अनाथपिंडिक का दान, भिक्षुणी संघ की स्थापना, विशाखा के सात्विक दान, सिंह की दीक्षा, महाराहुल, तेविज्ज, कुटदन्त ,सिगालोवाद सुत्त ।

६. भगवान् के जीवन के अन्तिम तीन मास

चापल चैत्य में आनन्द को उद्‌बोधन, भगवान का आयु संस्कार त्याग, आनन्द को महापरिनिर्वाण की सूचना, आनन्द की प्रार्थना, सैंतीस बोधि पाक्षीय धर्म, भंडग्राम में, भिक्षु संघ को चार शिक्षायें, अन्तिम भोजन, कुशीनगर के मार्ग में, मल्ल युवक पक्कुस, पक्कुस के सुनहले वस्त्रों की क्षीण आभा, ककुत्था नदी में, मल्लों के सालवन में अन्तिम शयनासन, जीवन की अन्तिम घड़ियाँ, चार महातीर्थों की घोषणा, अन्त्येष्टि क्रिया के लिये आज्ञा, आनन्द का शोकमोचन ! आनन्द के गुण, कुशी नगर का पूर्व वृत्त वर्णन, कुशीनगर के मल्लों के साथ, परिव्राजक सुभद्र की प्रव्रज्या, आनन्द और भिक्षु सब को अन्तिम उपदेश, भगवान का महापरिनिर्वाण, भगवान के शरीर का अभूत पूर्व दाह कर्म महाकाश्यप का पाँच सौ भिक्षुओं सहित शव-दर्शन, अस्थियों के लिये राजाओं की चढ़ाई, अस्थियों के आठ विभाग, अस्थियों पर ८ नगरों में स्तूप निर्माण ।

प्रकाशकीय

पिछले वर्ष (२५-५-५६) इसी पुस्तक की प्रकाशकीय लिखते समय हमने यह लिखा था कि भगवान् बुद्ध की जन्म भूमि भारत में उनके जीवन, कार्य एवं उपदेशों पर प्रकाश डालने के लिये उन्हीं के देश की आज की राष्ट्र भाषा हिन्दी में जीवनियाँ इनी गिनी ही हैं। पर संतोष का विषय है कि बुद्ध परिनिर्वाण की २५०० वर्षों की पूर्ति की जयन्ती के उपलक्ष में जनता और सरकार के सम्मिलित प्रयास के परिणाम स्वरूप आज हिन्दी में कई जीवनियाँ मिलती हैं।

स्वर्गीय पूज्य महास्थविर पाद बोधानन्द की यह 'भगवान् गौतम बुद्ध" भी पुनः मुद्रित कराकर पाठकों को देते हुए हमें अतीव प्रसन्नता होती है। द्वितीय सस्करण की अपेक्षा यह कुछ विस्तृत है। जिसे कि पाठक स्वय अनुभव करेंगे।

बुद्ध विहार, लखनऊ

२३ – ५ – ५७

गलगेदर प्रज्ञानन्द

बुद्ध कालीन भारत

भगवान् गौतम बुद्ध और वर्धमान महावीर के प्रादुर्भाव ने न केवल धार्मिक प्रत्युत राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। ईसा पूर्व छठी शताब्दी वास्तव में मानव-इतिहास में एक अभूत पूर्व शताब्दी थी। इस युग में पृथ्वी पर एक असाधारण आध्यात्मिक लहर उठी थी। लगभग इसी काल में ईरान में जरस्तु और चीन में कनफ्यूशस भी अपने धार्मिक उपदेशों से शिक्षा दे रहे थे। इसी समय भारत में भी यह क्रान्ति हुई ? जो न केवल धार्मिक क्रान्ति रही अपितु राजनीतिक और सामाजिक भी। जबकि कर्मकाण्ड परक ब्राह्मण अनुष्ठानों और हिंसामय यज्ञों तथा स्वार्थ-सिद्धि-साधक जातिवाद के विरुद्ध जनता ने बगावत का झंडा उठाया था।

राजनीतिक अवस्था

भगवान गौतम बुद्ध के समय में भारत तीन बड़े भागों में विभक्त था। ये भाग उत्तरापथ और दक्षिणापथ तथा मध्यदेश के नाम से प्रसिद्ध थे। हिमालय और विन्ध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम वाले प्रांत को मध्यदेश कहते थे। इसी के उत्तर और दक्षिण में अवस्थित रहने के कारण शेष भाग उत्तरापथ और दक्षिणापथ कहलाते थे। उन प्रदेशों में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। कोई केन्द्रीय शासन व्यवस्था न थी। उस समय के सुप्रसिद्ध १६ जनपदों में से चार का विशेष रूप से उल्लेख आया है। वे चार इस प्रकार हैं:—

१—मगध इसकी राजधानी राजगृह थी। बाद में पाटलिपुत्र बन गई। भगवान् बुद्ध के समय मगध पर राजा बिम्बिसार ने राज्य किया फिर उनके पुत्र राजा अजातशत्रु ने। इस वंश का प्रवर्तक शिशुनाग नामक एक राजा था। बिम्बिसार इस वंश का पाँचवां

राजा था और उसने अग देश अर्थात् भागलपुर और मुन्गेर को जीत-कर अपने राज्य का विस्तार किया।

२—दूसरा राज्य कोशल का था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी जो राप्ती नदी के तीर पर अवस्थित है।

३—तीसरा राज्य वत्सों का था जो कोशल राज्य से दक्षिण में था। उसकी राजधानी कौशाम्बी थी जो यमुना के तीर पर बसी थी। तथा उदयन इसका शासक था।

४—चौथा राज्य इनसे भी दक्षिण में उज्जैनी में अवन्तीकों का था तथा इसका राजा चण्डप्रद्योत था।

इन चारों के अतिरिक्त और जो १२ छोटी-बड़ी राजनीतिक इकाइया थीं वे इस प्रकार हैं —

१—अंगराज्य—इसकी राजधानी चम्पापुरी थी। चम्पापुरी वर्त-मान भागलपुर जिले के समीप थी।

२—काशी राज्य जिसकी राजधानी वाराणसी थी।

३—वज्जियों का राज्य इसकी राजधानी वैशाली वर्तमान मुज-फ्फरपुर में थी। इस राज्य में छोटी-बड़ी आठ जातियाँ थीं जिनमें वज्जि और विदेह प्रमुख थीं।

४—कुशीनारा और पावा के मल्ल राज्य—ये हिमालय की तराई में वर्तमान उत्तर प्रदेश के गोरखपुर-देवरिया में थे।

५—चेदि राज्य—इसमें दो उपनिवेश थे प्रथम नैपाल में तथा द्वितीय पूर्व में कौशाम्बी (प्रयाग के समीप) था।

६—कुरु राज्य—इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इसके पूर्व में पाचाल और दक्षिण में मत्स्य जातियाँ बसती थीं। इतिहासज्ञों की राय में इसका क्षेत्रफल दो सहस्त्र वर्ग मील था।

७—दो राज्य पान्चालों के थे। इनकी राजधानियाँ कन्नौज और कपिला थीं।

८—मत्स्य राज्य—जो कुरु राज्य के दक्षिण में और जमुना के पश्चिम

में था। इसमें अलवर, जयपुर और भरतपुर के अधिकांश भाग पड़ते थे।

९—शूरसेनों का राज्य–इसकी राजधानी मथुरा में थी।

१०—अश्मक राज्य–इसकी राजधानी गोदावरी नदी के तीर पोतन में थी।

११—गांधार–इसकी राजधानी तक्षशिला में थी।

१२—कम्बोज राज्य–इसकी राजधानी द्वारिका में थी।

परन्तु यह विशेष उल्लेखनीय है कि इन राज्यों के ये नाम इनकी शासक जातियों के नाम पर पड़े थे। इन राज्यों में कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो इन सभी को एक सूत्र में बांधे रहती। अत: ये सभी स्वतन्त्र थे और समय-समय पर आपस में लड़ भी जाते थे।

उस समय भारत में कई गणराज्य भी थे। महान् विद्वान महर्षि डा० राइस डेविड्स ने अपनी "बुद्धिस्ट इन्डिया" में उनकी संख्या ग्यारह निश्चित की है। जो इस प्रकार हैं :—

१. शाक्यों का गणराज्य, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु में थी।

२. भग्गों का गणराज्य, जिसकी राजधानी शिशुमार गिरि-पर्वत में थी।

३. बुल्लियों का गणराज्य, जिसकी राजधानी अल्लकप्प में थी।

४ कोलियों का गणराज्य, जिसकी राजधानी रामग्राम थी।

५. कालामों का गणराज्य जिसकी राजधानी केशपुत्त थी।

६. मल्लों का गणराज्य, जिसकी राजधानी कुशीनारा थी।

७. मल्लों का गणराज्य, जिसकी राजधानी पावा थी

८. मल्लों का गणराज्य, जिसकी राजधानी काशी थी।

९. मौर्यों का गणराज्य, जिसकी राजधानी पिप्पलीवन थी।

१०. विदेहों का गणराज्य, जिसकी राजधानी मिथिला थी।

११. लिच्छवियों का गणराज्य, जिसकी राजधानी वैशाली थी।

ये सब गणतन्त्री राज्य प्राय: आजकल के गोरखपुर, बस्ती, देवरिया और मुजफ्फरपुर जिले के उत्तर में अधिकांशत: बिहार राज्य में

फैले हुए थे। ये जातिया प्रजातन्त्र के सिद्धांतों के आधार पर शासन कार्य चलाती थीं और सभी के सिद्धात प्राय समान थे इन गणराज्यों में से सबसे अधिक उल्लेख शाक्य और लिच्छवी गणों का आया है। शाक्य जाति के राज्य की जन सख्या उस समय लगभग दस लाख थी। उनका देश नैपाल की तराई में लगभग पचास मील पूर्व से पश्चिम को तथा चालीस मील उत्तर से दक्षिण को फैला हुआ था। इस राज्य की राजधानी कपिलवस्तु थी। तथा राज्य के शासन का कार्य एक सभा द्वारा होता था। इस सभा के भवन को संस्थागार कहते थे। शाक्य जाति के छोटे बड़े सभी इस संस्था के सदस्य होते थे। परन्तु इस संस्था के प्रधान का चुनाव हुआ करता था। इस प्रकार एक निश्चित अवधि के लिए चुना गया राष्ट्रपति ही सभाओं का तथा राज्य का संचालन करता था। इस प्रकार के राष्ट्रपति को 'राजा' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। अपने समय में भगवान् बुद्ध के पिता महाराज शुद्धोदन शाक्यों के राजा अर्थात राष्ट्रपति थे। अत. भगवान् बुद्ध इसी गणराज्य के नागरिक थे।

दूसरा प्रमुख गणराज्य वज्जियों का था इसकी राजधानी वैशाली थी। इसे उस समय का संयुक्त गणराज्य कह सकते हैं। क्योंकि उसमें आठ जातियाँ बसती थीं।

प्रोफेसर राइस डेविड्स् अपनी 'बुद्धिस्ट इन्डिया" नामक] पुस्तक मे उस समय के गाँवों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि उस काल में सब गाव प्राय एक ही तरीके के बनाये जाते थे। सारी बस्ती को एक जगह इकट्ठी करके उसको गलियों में बाटा जाता था, गाव के समीप वृक्षों का एक झुण्ड रखा जाता था। उन वृक्षों की छांह में ग्राम-पचायत की बैठक हुआ करती थी। बस्ती के आसपास खेती की जमीन होती थी। गोचर भूमि सार्वजनिक सम्पत्ति में रक्खी जाती थी। जगल का एक टुकड़ा इसलिए छोड़ दिया जाता था कि वहाँ से प्रत्येक व्यक्ति जलाने के लिए ईंधन ला सके। सब लोग अपने अपने पशु अलग

अलग रखते थे। पर गोचर भूमि सभी की सम्मिलित रहती थी। जितनी जमीन में खेती होती थी उसके उतने ही भाग कर दिये जाते थे जितने कि उस ग्राम में घर होते थे। सब लोग अपने-अपने हिस्से में खेती करते थे। सिंचाई के लिए नालियां बनाई जाती थीं, सारी जोती हुई जमीन की एक बाड़ रहती थी। अलग अलग खेतों की अलग-अलग बाड़ें न रहती थी। सारी भूमि गाव की सम्पत्ति समझी जाती थी। प्राचीन कथाओं में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता कि जिसमें किसी भागीदार ने अपनी जोती हुई भूमि का भाग किसी विदेशी के हाथ वेंच दिया हो। किसी अकेले भागीदार को अपनी भूमि - वसीयत करने का भी अधिकार न था। यह सब काम तत्कालीन प्रथाओं के अनुसार होते थे। उस समय राजा भूमि का मालिक नहीं समझा जाता था। वह केवल कर लेने का अधिकारी था।

आर्थिक अवस्था

उस समय की जातकों और पाली एवं प्राकृत साहित्य से पता चलता है कि उस समय में भी इस देश में कई प्रकार के व्यवसाय होते थे। जैसे ढ़ई, व्याध, नाई, पालिश करने वाले, चमार, संगमरमर की वस्तुयें वेचने वाले, चित्रकार आदि सब तरह के व्यवसायी पाये जाते थे। उनकी कारीगरी के कुछ नमूने प्रोफेसर राइस डेविड्स ने "बुद्धिस्ट इण्डिया" नामक पुस्तक के छठे अध्याय में दिये हैं। सब तरह के व्यवसायों के होते हुए भी उस समय प्रधान धंधा कृषि का ही समझा जाता था। आज कल की तरह उस समय यहा की जनसंख्या इतनी बढी हुई न थी, इस कारण सब व्यक्तियों के हिस्से में जीवन निर्वाह की पूर्ति भर या उससे भी अधिक जमीन आती थी। खेती की उत्पत्ति का दसवां हिस्सा जहा राज्यकोष में जमा कर दिया बस सब ओर से निश्चिन्तता हो जाती थी। सरदारों-सरकारी कर्मचारियों और पुरोहितों को इनाम की जमीन भी मिलती थी। पर उस जमीन की व्यवस्था उनके

हाथ में नहीं रहती थी। व्यवस्था के लिए दूसरे कृषिकार नियुक्त रहते थे।

सामाजिक स्थिति

उपर्युक्त विवेचन के पढने से पाठकों के मन में उस समय की राजनीतिक और आर्थिक अवस्था के प्रति कुछ श्रद्धा की लहर का उठना सम्भव है। पर उन्हें हमेशा इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जहाँ तक समाज की नैतिक और धार्मिक परिस्थिति सन्तोषजनक नहीं होती वहा तक राजनीतिक परिस्थिति भी, फिर चाहे वह बाहर से कितनी ही अच्छी क्यों न हो कभी समुन्नत नहीं हो सकती। समाज की नैतिक परिस्थिति का राजनीति के साथ कारण और कार्य का सम्बन्ध है। यदि समाज की नैतिक स्थिति खराब है, यदि तत्कालीन जनसमुदाय में नैतिक बल की कमी है, तो समझ लीजिए कि उसकी राजनीतिक स्थिति कभी अच्छी नहीं हो सकती। इसके विपरीत यदि समाज में नैतिक बल पर्याप्त है, जनसमुदाय के मनोभावों में व्यक्तिगत स्वार्थ की मात्रा नहीं है तो ऐसी हालत में उस समाज की राजनीतिक स्थिति भी खराब नहीं हो सकती। यदि हुई भी तो वह बहुत ही शीघ्र सुधर जाती है। किसी भी राजनीतिक आन्दोलन के भविष्य को आन्दोलन कर्ताओं के नैतिक बल का अध्ययन करने से बहुत शीघ्र समझा जा सकता है। यह सिद्धान्त नूतन नहीं प्रत्युत बहुत पुरातन है और इसी सिद्धान्त की विस्मृति हो जाने के कारण ही भारत दीर्घकाल तक पतन के गर्त में पड़ा रहा है।

अब आगे हम उस काल की सामाजिक और नैतिक परिस्थिति का विवेचन करते हैं। पाठक इन सब परिस्थितियों का मनन कर वास्तविक निष्कर्ष स्वय निकाल लें।

भगवान् बुद्ध का जन्म होने के बहुत पूर्व आर्य लोगों के समुदाय पंजाब से बढते-बढ़ते बंगाल तक पहुँच चुके थे। उत्तम

जल-वायु और उपजाऊ जमीन को देखकर ये लोग स्थायी रूप से यहीं बसने लग गये। अब इन लोगों ने चौपाये चराने का अस्थिर व्यवसाय छोड़कर खेती करना आरम्भ किया। इस व्यवसाय के कारण ये लोग स्थायी रूप से मकान बना बना कर रहने लगे। धीरे धीरे इन मकानों के भी समुदाय बनने लगे और वे ग्राम संज्ञा से सम्बोधित किये जाने लगे। इस प्रकार स्थायी रूप से जम जाने पर प्रकृति के नियमानुसार इन लोगों के विचारों में परिवर्तन होने लगा। इधर उधर फिरते रहने की अवस्था में इनके हृदयों में स्थल विशेष के प्रति अभिमान उत्पन्न नहीं हुआ था। पर अब एक स्थल पर स्थायी रूप से जम जाने के कारण उनके मनोभावों में स्थानाभिमान का सचार होने लगा। इसके अतिरिक्त यहाँ के मूलनिवासियों को इन लोगों ने अपना गुलाम बना लिया था और इस कारण उनके हृदय में स्वामित्व और दासत्व, श्रेष्ठत्व और हीनत्व की भावनाओं का संचार होने लग गया। उनके तत्कालीन साहित्य में विजित और विजेता की तथा आर्य व अनार्य की भावनायें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। ये भावनायें यहीं पर समाप्त न हुईं। अभिमान स्वभावत. किसी भी छिद्र से जहा कहीं भी घुसता है वहाँ फिर वह अपना विस्तार बहुत कर लेता है। आर्यों के मनमें केवल अनार्यों के ही प्रति ऐसे मनोविकार उत्पन्न हो कर नहीं रह गये प्रत्युत आगे जा कर उनके हृदयों में आपस में भी ये भावनाएँ दृष्टिगोचर होने लगीं। क्योंकि इन लोगों में भी सब लोग समान व्यवसाई तो थे नहीं सब भिन्न-भिन्न व्यवसाय के करने वाले थे। कोई खेती करता था, कोई व्यवसाय करता था कोई मजदूरी करता था तो कोई अध्ययन-अध्यापन का कार्य करके अपना जीवन निर्वाह करता था। कोई कम परिश्रम पूर्ण कर्म करता था कोई कठिन परिश्रम पूर्ण, पर, कम आय वाले कार्य करते थे। तथा कथित उत्कृष्ट-व्यवसायी लोग इतर-व्यवसाइयों से घृणा करते थे फल इसका यह हुआ कि समाज में एक प्रकार की विशृंखलता उत्पन्न हो गई। इस विशृंखलता का यह परिणाम हुआ कि व्यवसाय गत भेद

वद्ध मूल होता गया। मनुष्य ने स्वयं ही मानव के बीच जाति व वर्णों की कल्पना रूपी एक घृणित दीवार खड़ी कर ली।

चार वर्ण--बुद्ध के समय भारत की सामाजिक दशा कैसी थी इसका वर्णन हमें बौद्ध साहित्य में विशेषकर जातकों में मिलता है। इन स्रोतों से यह पता लगता है कि उस समय का समाज चार वर्णों में विभक्त था और यह विभाजन कर्मणा नहीं जन्मना था चाण्डालों की एक पाँचवीं जाति थी।

ये चारों वर्ण बिलकुल अलग अलग रहने का प्रयत्न करते थे। विवाह सम्बन्ध एक दूसरी जाति में नहीं होता था। किसी प्रकार तथा कथित उच्च और नीच वर्णों के बीच के सम्बन्ध से जो सन्तान उत्पन्न होती थी वह उभय वर्णों से अलग समझी जाती थी। अतः लोग इस बात का ध्यान रखते थे कि समान जाति में **विवाह-सम्बन्ध हो**।

बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों से यह भी मालूम होता है कि उस समय ब्राह्मणों की नहीं क्षत्रियों की प्रधानता थी। अतः इन जातियों के उल्लेख के समय प्रथम क्षत्रिय और फिर ब्राह्मण आता है। इन दो जातियों में उस समय नेतृत्व के लिये खींचातानी चल रही थी क्षत्रिय भी नाना प्रकार की विद्या, ज्ञान और तपस्या में ब्राह्मणों का मुकाबिला करते थे।

क्षत्रिय और ब्राह्मण अपनी रक्त की शुद्धता के लिये बहुत जोर देते थे। ब्राह्मण अपनी जीविका के लिये हर प्रकार के काम करते थे। फिर भी वे ब्राह्मण ही बने रहते थे।

वैश्य अर्थात् व्यवसायी-कृषक तीसरी श्रेणी में थे। इनके लिये अधिकतर गृहपति और कौटुम्बिक शब्द आये हैं। इन्हें भी अपने कुल का बड़ा अभिमान था। राजाओं के दरबार में इन गृहपतियों का इनके धन और पद के कारण बड़ा सम्मान होता था गृहपतियों का जो प्रतिनिधि दरबार के लिये नियुक्त होता था वह श्रेष्ठि कहलाता था। अलग-अलग कार्य करने वाले गृहपतियों की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं।

शुद्रों में प्राय: सभी अनार्य ही थे। "चाण्डाल" इनसे भी हीन एक और जाति थी। चाण्डाल लोग नगर से बाहर एक स्वतंत्र ग्राम बसा कर रहते थे। वह ग्राम उनके नाम से चाण्डाल ग्राम कहलाता था। इन चाण्डालों को छूना तो दूर रहा देखना भी महान् पाप समझा जाता था। उनकी छुई हुई चीज अशुद्ध मानी जाती थी। उनकी भाषा भी भिन्न थी।

धार्मिक अवस्था

भगवान् बुद्ध के समय में भारत की धार्मिक अवस्था भी बहुत ही भयंकर थी। पशुयज्ञ और बलिदान उस समय अपनी सीमा तक पहुँच गया था। प्रतिदिन हजारों निरपराध पशु तलवार के घाट उतारे जाते थे! दीन, मूक और निरपराध पशुओं के खून से यज्ञ की वेदी लाल कर ब्राह्मण लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति करते थे। जो मनुष्य अपने यज्ञ में जितनी ही अधिक हिंसा करता था, वह उतना ही पुण्य-वान समझा जाता था। जो ब्राह्मण पहले किसी समय में दया के अव-तार समझे जाते थे वे ही उस समय में पाशविकता की प्रचण्ड मूर्ति की तरह छुरा लेकर मूक पशुओं का वध करने के लिए तैयार रहते थे। विधान बनाना तो इन लोगों के हाथ में था ही जिस कार्य में यह अपनी स्वार्थ लिप्सा को चरितार्थ होते देखते थे उसी को विधान का रूप दे देते थे। प्रतीत होता है कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" आदि विधान उसी समय में उन्होंने अपनी दुष्ट वृत्ति को चरितार्थ करने के निमित्त बना लिए थे।

सारे समाज के अन्दर कर्मकाण्ड का सार्वभौमिक राज्य हो गया था। समाज वाह्याडम्बर में सर्वतोभावेन फँस चुका था। समाज सैकड़ों जातीय भागों और उपभागों में बट चुका था। उसकी आत्मा घोर अन्धकार में पड़ी हुई प्रकाश को पाने के लिए चिल्ला रही थी। किन्तु कोई इस चिल्लाहट को सुनने वाला न था। इस यज्ञ प्रथा का

प्रभाव समाज में बहुत भयंकर रूप से बढ़ रहा था। यज्ञों में भयकर पशुवध को देखते-देखते लोगों के हृदय बहुत क्रूर और निर्दय हो गये थे। लोगों के हृदय से दया और कोमलता की भावनायें नष्ट हो चुकी थीं। और आत्मिक जीवन के गौरव को भूल गये थे। आध्यात्मिकता को छोड़कर समाज भौतिकता का उपासक हो गया था। केवल यज्ञ करना और कराना ही उस काल में मुक्ति का मार्ग समझा जाने लगा था। वास्तविकता से लोग बहुत दूर जा पड़े थे। उनमें यह विश्वास दृढता से फैल गया था कि यज्ञ की अग्नि में पशुओं के मास के साथ साथ हमारे दुष्कर्म भी भस्म हो जाते हैं। ऐसी अप्रामाणिक स्थिति के बीच वास्तविकता का गौरव समाज में कैसे रह सकता था। इसके सिवाय यज्ञ करने में बहुत सा धन भी खर्च होता था, जिस यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणायें न दी जाती थीं वह यज्ञ अपूर्ण समझा जाता था फलत बड़ी-बड़ी दक्षिणायें ब्राह्मणों को दी जाती थी। कुछ यज्ञ तो ऐसे थे जिनमें वर्ष भर लग जाता था और हजारों ब्राह्मणों की जरूरत पड़ती थी। अतएव जो लोग सम्पत्तिशाली होते थे, वे तो यज्ञादि कर्मों के द्वारा अपने पापों को नष्ट करते थे। पर निर्धन लोगों के लिए यह मार्ग सुगम न था। उन्हें किसी भी प्रकार ब्राह्मण लोग मुक्ति का पर-वाना न देते थे। इसलिए साधारण स्थिति के लोगों ने आत्मोन्नति के लिए दूसरे उपाय ढूढ़ने आरम्भ किये। इन उपायों में से एक उपाय "हठयोग भी था। उस समय लोगों को वह विश्वास हो गया था कि कठिन से कठिन तपस्या करने पर ऋद्धि और सिद्धि प्राप्त हो सकती है। आत्मिक उन्नति प्राप्त करने और प्रकृति पर विजय पाने के निमित्त लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा अपनी काया को कष्ट देते थे। पंचाग्नि तापना एक पैर से खड़े होकर एक हाथ उठाकर तपस्या करना महीनों तक कठिन से कठिन उपवास करना आदि इसी प्रकार की गई अन्य तपस्यायें भी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझी जाती थीं।

इन तपस्याओं को करते-करते लोगों का अभ्यास इतना बढ गया था कि उन्हें कठिन से कठिन यन्त्रणाएँ भुगतने में भी अधिक कष्ट न होता था। जनता के अन्दर यह विश्वास जोरों के साथ फैल गया था कि यदि वह तपस्या पूर्णरूपेण हो जाय तो मनुष्य विश्व का सम्राट हो सकता है। यह भ्रम इतनी दृढ़ता के साथ समाज में फैला हुआ था कि स्वयं भगवान बुद्ध भी छः वर्षों तक उसके चक्कर में पड़े रहे पर अन्त में इसकी निस्सारता प्रतीत होते ही उन्होंने इसे छोड़ कर अपना स्वयं का मार्ग अपनाया।

समाज में यज्ञवादियों और हठयोगवादियों के अतिरिक्त कुछ अंश ऐसा भी था जिसे इन दोनों ही मार्गों से शान्ति न मिलती थी। वे लोग सच्ची धार्मिक उन्नति के उपासक थे। उनको समाज का यह कृत्रिम जीवन बहुत कष्ट देता था। ये लोग समाज से और घर-बार से मुंह मोड़कर सत्य की खोज के लिए जंगलों में भटकते फिरते थे। भगवान बुद्ध के पहले और उनके समय में ऐसे बहुत से परिव्राजक, सन्यासी और साधु एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करते थे। समाज में प्रचलित संस्थाओं से उनका कोई सम्बन्ध न था। अपितु वे लोग तत्कालीन प्रचलित धर्म और प्रणाली का डंके की चोट विरोध करते थे। वे लोग सर्व-साधारण के हृदयों में प्रचलित धर्म के प्रति अविश्वास का बीज आरोपित करते जाते थे। इन सतों ने सनाज के अन्दर बहुत बड़े उत्तम विचारों का क्षेत्र तैयार कर दिया था।

इसके अतिरिक्त भगवान बुद्ध के पूर्व उपनिषदों का भी चिंतन प्रारम्भ हो चुका था। इन उपनिषदों में कर्म के ऊपर ज्ञान की प्रधानता दिखलाई गई थी, उनमें ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश और मोह से निवृत्ति बतलाई थी। इन उपनिषदों में पुनर्जन्म का अनुमान, जीवन के सुख-दुख का कारण परमात्मा की सत्ता, आत्मा और परमात्मा में सम्बन्ध आदि कई गम्भीर प्रश्नों पर विचार किया गया है। धीरे-धीरे इन उपनिषदों का अनुशीलन करने वालों की संख्या बढ़ने लगी।

इनके अध्ययन से लोगों ने और कई तत्त्वज्ञान निकाले। किसी ने इन उपनिषदों से अद्वैतवाद का आविष्कार किया किसी ने विशिष्टाद्वैत का और किसी ने अद्वैतवाद का। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे लोगों की संख्या उस समय समाज में बहुत ही कम थी और समाज में इनकी प्रधानता भी न थी। अर्थ यह है कि भगवान बुद्ध के पूर्व भारत में कई मत-मतान्तर प्रचलित हो गए थे। दीघनिकाय के अनुसार ये बासठ प्रकार के थे। पर प्रधानतया ऊपरी लिखित तीन प्रधान विचार प्रवाह भगवान् बुद्ध के पूर्व समाज में प्रचलित हो रहे थे। इनके अतिरिक्त टोने-टके, भूत-प्रेत, चुड़ैल आदि बातों के भी छोटे-छोटे मत मतान्तर जारी थे, पर लोगों का हृदय जिस प्रश्न का उत्तर चाहता था, वह जिस शका का समाधान चाहता था, जिस दुःख की निवृत्ति का मार्ग, चाहता था, वह ऊपर लिखे गये किसी भी मत से न मिलता था।

लोग इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये इच्छुक थे कि संसार में प्रचलित इस दुख का और अशान्ति का प्रधान कारण क्या है?

याज्ञिक कहते थे कि देवताओं का कोप ही ससार की अशान्ति का प्रधान कारण है। इस अशान्ति को मिटाने के लिये उन्होंने देवताओं को प्रसन्न करना आवश्यक बतलाया और इसके लिये पशुओं और खाद्य सामग्री के द्वारा यज्ञ की योजना की। हठयोगवादियों ने इस दुःख का मुख्य कारण तपस्या का अभाव बतलाया। उन्होंने कहा कि तपस्या के द्वारा मनुष्य अपने शरीर और इन्द्रियों पर अधिकार कर सकता है और इन पर अधिकार होते ही अशान्ति और दुःख से छुटकारा मिल जाता है। ज्ञान मार्ग का अनुसरण करने वालों ने कहा कि—अशान्ति का मूल कारण अज्ञानता जनित तृष्णा है। ज्ञान के द्वारा अज्ञानता का नाश कर देने से मनुष्य सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकता है।

लेकिन इन सब दार्शनिक समाधानों से जनता के मन को तृप्ति न होती थी। जिस भयङ्कर ऊहापोह के अन्दर समाज पड़ा था, उसका

निराकरण करने में ये शुष्क उत्तर बिल्कुल असमर्थ थे। समाज को उस समय करुणा, दया, प्रेम और सहानुभूति की सबसे अधिक आवश्यकता थी। कृतघ्नता, मोह और अत्याचार की भयंकर अग्नि उसको बुरी तरह दग्ध कर रही थी। ऐसी भयंकर परिस्थिति में वह ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा कर रहा था जो सारे समाज के अन्दर शांति दया, समता और सहानुभूति की भावना उत्पन्न कर दे। ठीक ऐसे भयंकर समय में देश के सौभाग्य से आचार्य वृहस्पति, भगवान महावीर और भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए। परिस्थिति के पूर्ण अध्ययन के पश्चात् भगवान बुद्ध ने भारत को और सारे संसार को अश्रुतपूर्व लोकोत्तर धर्म का मानव को उपदेश किया।

उन्होंने कहा दुःख से संतप्त मानव को दुःख से निवृत्ति और मोहान्धकार से निवृत्ति हेतु ज्ञान प्रदीप की आवश्यकता है। यज्ञों से मंत्रों से अथवा बन, पर्वत, चौरा आदि की शरण जाने से मानव को शान्ति नहीं मिल सकती है। इसी प्रकार काम में ही लिप्त होने अथवा क्लेशमय हठ योग से शरीर को सुखाने आदि अतियों वाले कृत्यों से मनुष्य का कल्याण नहीं होगा। ये व्यर्थ हैं। उन्होंने बतलाया यज्ञ, कर्मकाण्ड और कुतपस्याओं की अपेक्षा शुद्ध अन्तःकरण का होना अति आवश्यक है। उन्होंने साधारण जनता को पाँचशीलों का आदेश दिया। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण और नीच, धनी और निर्धनी सब बराबर थे। उनका निर्वाण मार्ग सब के लिये खुला था।

ऐसी भयंकर परिस्थिति के मध्य उत्पन्न होकर भगवान बुद्ध ने तत्कालीन तड़फते हुए समाज में नव जीवन का संचार किया। अशान्ति की त्राहि-त्राहि को मिटा कर उन्होंने समाज में शान्ति की स्थापना की। उनके दिव्य मानवीय उपदेश से अकर्मण्य और आलसी समाज कर्मयोगी होगया। अत्याचारी समाज दयालु हो गया और सारा विश्रृंखलित समाज श्रृंखलाबद्ध होगया। इस प्रकार उन तथागत बुद्ध ने ऐहिक और पारलौकिक दोनों दृष्टियों से विश्व का कल्याण किया।

भगवान् गौतम बुद्ध का जन्म .

रोहिणी नदी के पश्चिम कपिलवस्तु नगरी शाक्यों के संघराष्ट्र की राजधानी थी। रोहिणी के पूर्व कोलियों का देवदह था। शुद्धोदन शाक्य भी कपिलवस्तु के राजा अर्थात् राष्ट्रपति थे। उन्होंने एक कोलिय राजा की दो कन्याओं, महामाया और प्रजापती से विवाह किया।

वरसों की प्रतीक्षा के बाद महामाया में पुत्र होने के लक्षण प्रकट हुए। गर्भ के परिपूर्ण होने पर वह पितृगृह जाने की इच्छा से महाराज शुद्धोदन से बोलीं, देव! अपने पिता के कुल के देवदह नगर को जाना चाहती हूँ। राजा ने 'अच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक के मार्ग को ठीक करवा कर उन्हें भारी सेवक परिषद के साथ भेज दिया।

दोनों नगरों के बीच, दोनों ही नगर वालों का सम्मिलित वन एक लुम्बिनी नामक शालवन था। उस वन के समीप से जाते समय महामाया देवी को उसकी सुन्दरता देख उसमें क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। देवी ने एक सुन्दरशाल के नीचे जा, शाल की डाली पकड़नी चाही। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये वेंत की छड़ी की नोक की भाँति लटक कर देवी के हाथ के पास आगई। उन्होंने हाथ पसार कर शाखा पकड़ ली। उसी समय उनके प्रसव वेदना हुई। लोग इर्द-गिर्द कनात घेर स्वयं अलग हो गये। शाल-शाखा पकड़े खड़े ही खड़े, उनके प्रसव हो गया और उसी समय वर्षा कर मेघ ने बोधिसत्व और उनकी माता के शरीर को ठंडा किया। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्व और उनकी माता को लेकर कपिलवस्तु नगर को ही लौट गये।

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुल में पूजित, आठ समाधि

(समापत्ति) वाले काल देवल नामक तपस्वी भोजन करके दिवा विहार के लिये तैयारी कर रहे थे। उन्हें मालूम हुआ कि महाराज शुद्धोदन के एक महायशस्वी पुत्र हुआ है। तपस्वी ने शीघ्र ही राजभवन में प्रवेश कर, विछे आसन पर बैठकर, कहा—महाराजा आपको पुत्र हुआ है मैं उसे देखना चाहता हूँ। महाराज ने सुन्दर रूप से अलंकृत कुमार को मँगाकर दर्शन कराया।

काल देवल तपस्वी उस वालक में महापुरुष के लक्षण देख प्रसन्नता से खिल उठे और फिर रो उठे। महाराजा और परिजनों ने विस्मित हो हँसने और रोने का कारण पूछा। तपस्वी (ऋषि) ने कहा, इनको कोई संकट नहीं है ये एक महान् पुरुष होंगे, इससे हँसा; पर मैं इनकी उस अवस्था को देख नहीं पाऊंगा, यह मेरा दुर्भाग्य है, इसी से मैं रोया।

पाँचवें दिन वोधिसत्व को शिर से पैर तक नहला कर नामकरण संस्कार किया गया। राज-भवन को चारों प्रकार के गन्धों से लिपवाया गया। खीलों सहित चार प्रकार के पुष्प विखेरे गये। निर्जल खीर पकाई गई। राजा ने तीनों वेदों के पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को निमंत्रित किया। उन्हें राज भवन में वैठा, सुन्दर भोजन करा, सत्कार-पूर्वक वोधिसत्व के भविष्य के वारे में पूछा।

उन भविष्य वक्ताओं में आठ मुख्य थे। उनमें से सात ने दो-दो उँगलियाँ उठाकर दो प्रकार की सम्भावनाएँ वतलाईं। अर्थात् यह महाज्ञानी विवृत कपाट वुद्ध अथवा चक्रवर्ती राजा (सम्राट) होंगे। परन्तु उनमें के एक ने तो केवल एक ही प्रकार का भविष्य कहा कि ये निश्चय पूर्वक वुद्ध होंगे। इनकी एक ही गति होगी।

उसी अवसर पर आयोजित जाति-वधुओं की परिषद ने अपने एक एक पुत्र को देने की प्रतिज्ञा की। यह कुमार चाहे वुद्ध हों अथवा शासक हम इसे अपना एक-एक पुत्र देदेंगे। यदि यह वुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुओं से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो, क्षत्रिय राजकुमारों से परस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

राजा ने बोधिसत्व के लिये उत्तम रूपवाली, सब दोषों से रहित धाइयों की नियुक्ति करादी। बोधिसत्व बहुत परिवार के बीच महती शोभा और श्री के साथ बढने लगे।

एक दिन राजा के यहाँ खेत बोने का उत्सव था। श्रमदान के उस उत्सव के दिन लोग सारे नगर को देवताओं के विमान की भाँति अलकृत करते थे। सभी दास (गुलाम) और नौकर आदि नये वस्त्र पहन गंध माला आदि से विभूषित हो, राज-भवन में इकट्ठे होते थे। राजा की एक हजार हलों की खेती थी। लेकिन उस दिन बैलों की रस्सी की जोत के साथ एक कम आठ सौ सभी रुपहले हल थे। राजा का हल रत्न व सुवर्ण जटित था। बैलों की सींग, रस्सी, कोड़े भी सुवर्ण खचित ही थे। राजा बड़े दल-बल के साथ पुत्र को भी ले वहाँ पहुँचा। खेती के स्थान पर ही घनी छाया वाला जामुन का एक वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शय्या बिछवाई गई चन्दवा, तनवाकर कनात से घिराकर पहरा लगवा दिया गया। फिर सब अलंकारों से अलंकृत हो मंत्रियों के सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर श्रमदान के लिये गया। वहाँ उसने तथा मत्रियों ने सुनहले-रुपहले हलों को पकड़ा और कृषकों ने अन्य हलों को। हलों को पकड़ कृषकों सहित राजा इस पार से उस पार और उस पार से इस पार आते थे। वहाँ बड़ी भीड़ थी, बड़ा तमाशा था।

बोधिसत्व की रक्षक धाइयाँ इस राजकीय-तमाशे को देखने के लिये बाहर चली आईं और वहीं बहुत देर रहीं। बोधिसत्व (कुमार) भी इधर-उधर किसी को न देख झट पट उठे और श्वास प्रश्वास पर ध्यान दे, प्रथम ध्यान प्राप्त किये। धाइयों ने कुमार अकेले हैं सोच जल्दी से कनात उठा अन्दर घुसकर कुमार को बिछौने पर आसन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार को देख धाइयों ने जाकर राजा से कहा। राजा वेग से आ, उस चमत्कार को देख मंत्रियों एवं शेष कृषक परिवार के साथ आनन्दित हुआ।

बाल्यकाल

राजपुत्र सिद्धार्थ शुक्लपक्ष के चंद्रमा की तरह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे। उनके रूप-लावण्य की छटा देखकर माता-पिता, ज्ञाति, मित्र और पुरवासी लोग अति आनन्दित होते थे। उनके खेल-कूद और विनोद के लिये नाना प्रकार की सामग्री इकठ्ठा की गई, किन्तु सिद्धार्थ शैशव काल से ही क्रीड़ासक्त न थे। उन्हें एकान्त में बैठना बहुत प्रिय था। जब वह कुछ बड़े हुए, तब राजा ने उन्हें विद्या-अध्ययन के लिये अपने कुलगुरु विश्वामित्र के आश्रम में भेज दिया। राजकुमार सिद्धार्थ ने अपनी प्रखर प्रतिभा से थोड़े ही काल में तत्कालीन प्रचलित सब प्रकार की विद्याएँ सीख लीं। शिक्षा समाप्त होने पर राजकुमार गुरु-गृह से अपनी राजधानी में लौट आये।

हंस पर दया

एक बार राजकुमार सिद्धार्थ अपने उद्यान में विचार-निमग्न बैठे थे कि आकाश में उड़ते हुए हंसों की पंक्ति में से बाण से विद्ध एक हंस उनके सम्मुख गिरा और छटपटाने लगा। दया से द्रवित होकर राजकुमार ने उस हंस को उठा लिया और हौज के जल से उसके शरीर का रक्त धोकर उसके घावों पर सावधानी से पट्टी बांधने लगे। इसी समय उनका चचेरा भाई देवदत्त, वहाँ आया और बोला—"इस पक्षी को मैंने मारा है। मैं इसका स्वामी हूँ। इसे मुझको दे दीजिये।" सिद्धार्थ ने पक्षी देने से इनकार किया। अतएव परस्पर विवाद होने लगा। इसका निर्णय न्यायाधीश के निकट पहुँचा। न्यायाधीश ने निर्णय किया कि "जिसने उसकी रक्षा की है और जो उसके घावों को अच्छा करके उसे जीवन-दान देगा, वही उस पक्षी का स्वामी हो सकता है।"

स्वयंवर और विवाह

नई उम्र में ही राजकुमार के एकातवास और वैराग्य-भाव को देखकर महाराज शुद्धोदन को कालदेवल ऋषि की भविष्यवाणी स्मरण हो आती थी। उन्हे अहर्निश यह चिंता रहती थी कि पुत्र कहीं विरक्त न हो जाय। अतएव राजा ने मत्री, पुरोहित और ज्ञाति-जनों की सम्मति से देवदह के **महाराज दंडपाणि** की रूप-लावण्यवती कन्या **राजकुमारी गोपा** के साथ, जिसे **यशोधरा** और **उत्पलवर्णा** भी कहते हैं, राजकुमार के विवाह का प्रस्ताव किया। महाराज दडपाणि ने उत्तर दिया कि "जो स्वयवर की परीक्षा में जीतेगा. वही गोपा को वरेगा।" निदान स्वयवर रचा गया। जिसमें देवदत्त आदि पाँच-सौ शाक्य कुमार और अनेक गुणज्ञ एकत्रित हुए। महाराज शुद्धोदन, आचार्य विश्वामित्र और आचार्य अर्जुन आदि चतुर पुरुष परीक्षक मध्यस्थ नियत हुए। इस स्वयवर में लिपिज्ञान, संख्याज्ञान, लघित, प्लवित, असि-विद्या, वाण-विद्या, धनुर्विद्या, काव्य, व्याकरण, पुराण, इतिहास, वेद, निरुक्त, निघंटु, छद, ज्योतिष, यज्ञकल्प, साख्य, योग, वैशेषिक, स्त्रीलक्षण, पुरुषलक्षण, स्वप्नाध्याय, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण, अर्थविद्या, हेतुविद्या, पत्रछेद्य और गधयुक्ति आदि कला और विद्याओं की परीक्षा में राजकुमार ने जब विजय पाई, तो राजकुमारी गोपा ने उनके गले में जयमाला डाल दी और विधिपूर्वक उनका विवाह हो गया। विवाह के समय राजकुमार सिद्धार्थ की आयु १६ वर्ष की थी और वही आयु राजकुमारी गोपा की थी। दोनों समवयस्क और परम सुन्दर थे।

प्रमोद-भवन

विवाह होने पर भी राजकुमार का एकात में बैठकर ध्यान करना और जन्म मरणादि प्रश्नों पर विचार करना न छूटा, जिससे महाराज शुद्धोदन की चिन्ता वढ गई। वह इस प्रकार का उपाय करने लगे जिससे

राजकुमार का वैराग्य-भाव कम हो। उन्होंने कुमार के आमोद-प्रमोद के लिये तीन ऋतुओं में उपयोगी तीन महल बनवाए—इन महलों में छहों ऋतुओं के अनुकूल छटा छाई रहती थी और ये सब प्रकार की विलास-योग्य वस्तुओं से परिपूर्ण थे। महाराजा ने इन सुरम्य प्रासादों का नाम 'प्रमोद-भवन' रक्खा और कुमार की परिचर्या के लिये समवयस्का सुन्दर स्त्रियों को नियुक्त किया, जो नृत्य, गायन आदि हर प्रकार की कलाओं में प्रवीण थीं। इन स्त्रियों के शरीर भाँति-भाँति की सुगंधों से सुवासित और अनुपम सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुशोभित रहते थे। सारांश यह कि महाराज ने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया कि राजकुमार का चित्त सदैव विलासितामय जीवन में ही रमता रहे वैराग्य की ओर न जाने पाये, किन्तु इस प्रकार की ऐश्वर्यों का भोग करते हुये भी राजकुमार का विरक्ति-भाव और ध्यान करना दूर नहीं हुआ।

निमित्त-दर्शन और वैराग्य

महाराज शुद्धोदन ने यद्यपि राजकुमार के लिए भोग-विलास की हर प्रकार की सामग्री उनके प्रमोद-भवन में ही एकत्रित कर दी थी-फिर भी उनकी आन्तरिक भावनाए दबी न रह सकी। इस अवस्था के विषय में **अंगुत्तर निकाय** के तिक निपात में भगवान बुद्ध भिक्षुओं से कहते हैं:—भिक्षुओं! मैं बहुत सुकुमार था। मेरे सुख के लिए मेरे पिताने तालाब खुदवाकर उसमें अनेक जातियों की कमलिनियाँ लगवाई थीं। काशी के बने रेशमी मेरे वस्त्र हुआ करते थे। मैं जब बाहर निकलता था तो मेरे नौकर मेरे ऊपर श्वेत छत्र इसलिये लगाते थे कि मुझे शीतोष्ण की बाधा न हो। ग्रीष्म वर्षा और शीत, ऋतुओं के लिये मेरे अलग-अलग प्रासाद थे। मैं जब वर्षाऋतु के लिये बने महल में रहने के लिये जाता था तो चार महिने बाहर न निकलकर स्त्रियों के गायन वादन में ही समय बिताता था। तरों के घर दास और नौकरों

को निकृष्ट अन्न दिया जाता था पर मेरे यहाँ दास-दासियों को उत्तम मासमिश्रित अन्न मिला करता था।

१. "इस प्रकार सम्पत्ति का उपभोग करते हुए मेरे मन में यह बात आई कि अविद्वान साधारण मनुष्य स्वयं जरा के पंजे में पड़ने वाला होते हुए भी जराग्रस्त आदमी को देखकर घृणा करता और उसका तिरस्कार करता है। मैं भी स्वयं जरा के पजे में पड़ने वाला होते हुए भी यदि उस साधारण मनुष्य की भानि जराग्रस्त से घृणा करूँ या उसका तिरस्कार करूँ तो यह मुझे शोभा न देगा। इस विचार से मेरा तारूण्यमद समूल नष्ट हुआ।"

२ "अविद्वान साधारण मनुष्य स्वय व्याधि के पंजे में पड़ने वाला होते हुए भी व्याधिग्रस्त को देखकर घृणा करता और उसका तिरस्कार करता है। मैं भी स्वय व्याधि के भव से मुक्त न होते हुए भी यदि उस साधारण मनुष्य की भाति व्याधिग्रस्त से घृणा करूँ या उसका तिरस्कार करूँ तो यह मुझे शोभा न देगा। इस विचार से मेरा आरोग्य मद समूल नष्ट हुआ।"

३. अविद्वान साधारण मनुष्य स्वयं मरणधर्मी होते हुए भी मृत शरीर को देखकर घृणा करता और उसका तिरस्कार करता है। मैं भी स्वयं मरणधर्मी होते हुए यदि उस साधारण मनुष्य की भाँति मृत शरीर से घृणा करूँ या उसका तिरस्कार करूँ तो यह मुझे शोभा न देगा। इस विचार से मेरा जीवन मद समूल नष्ट हुआ।"

४. "भगवान् और भी कहते हैं:—"अपर्याप्त जल में जिस प्रकार मछलियाँ तड़पती हैं, उसी प्रकार एक दूसरे का विरोध कर तड़पने वाली जनता को देखकर मेरे अत. करण में भय का सचार हुआ। चारों ओर संसार असार जान पड़ने लगा। संदेह हुआ कि दिशाए काप रही हैं। उनमें आश्रय की जगह खोजते हुए मुझे निर्भय स्थान मिलता नहीं था। अन्त तक सारी जनता एक दूसरे के विरुद्ध ही दिखाई देने के कारण मेरा मन उद्विग्न हुआ।"

राहुल का जन्म

एक दिन राजकुमार प्रसन्न मुद्रा में थे। उन्होंने वह दिन राजोद्यान में बिताने का विचार किया और बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उद्यान में मनोरंजन करने लगे। उन्होंने उस वाटिका की सुन्दर निर्मल पुष्करिणी में स्नान किया, और स्नान करके एक शिला पर विराजमान हुए। सेवकगण उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण पहनाने लगे। वस्त्रालंकारों से विभूषित हो वह रथ पर सवार हुए। उसी समय उन्हें खबर मिली कि राजकुमारी गोपा ने एक पुत्र-रत्न प्रसव किया है। यह सुनकर वह विचार करने लगे कि यह बालक हमारे संसार-त्याग के संकल्प-रूपी पूर्णचन्द्र को ग्रसने के लिये राहु-रूप उत्पन्न हुआ है, बोले—राहु आया है।" प्राणप्रिय पुत्र के मुख से "राहुल" शब्द सुनकर महाराज शुद्धोदन ने अपने पौत्र का नाम "राहुल कुमार" रक्खा। उस समय राजकुमार सिद्धार्थ की आयु २९ वर्ष की थी। राहुल कुमार की उत्पत्ति से महाराज शुद्धोदन के आनन्द का ठिकाना न रहा। राजभवन में भाँति-भाँति का हर्षानन्द मनाया जाने लगा। याचकों और दीन-दुखियों को महाराज ने अपरिमित दान दिया। कपिलवस्तु नगरी आनन्दोत्साह से परिपूर्ण हो गई।

कृषा को उपहार

इधर वह आनन्द हो रहा था, उधर राजकुमार सिद्धार्थ संसार-त्याग के संकल्प में निमग्न, रथ पर विराजमान हो, उद्यान से राजभवन को लौट रहे थे। जब वे नगर के एक सुसज्जित राजमार्ग से निकले, तो अपने कोठे पर बैठी हुई कृषा गौतमी नाम की एक सुन्दरी नवयुवती सेठ-कन्या ने राजकुमार सिद्धार्थ के अनुपम सुन्दर रूप को देखकर कहा—"धन्य है वह पिता जिसने तुम्हारा ऐसा पुत्र पाया, धन्य है वह माता जिसने तुम्हें जन्म दिया और पाला-पोसा, और धन्य है वह रमणी, जिसे तुमको अपना प्राणपति कहने का सौभाग्य प्राप्त है।"

राजकुमार ने इस प्रशंसा को सुन लिया। वह कृषा-गौतमी को संबोधित करके बोले—'धन्य हैं वे जिनकी राग और द्वेष-रूपी अग्नि शान्त हो गई है, धन्य हैं वे जिन्होंने राग, द्वेष, मोह और अभिमान को जीत लिया है, धन्य हैं वे जिन्होंने ससार-स्रोत का पता लगा लिया है, और धन्य हैं वे जो इसी जीवन में निर्वाण-सुख प्राप्त करेंगे। भद्रे, मैं निर्वाण पथ का पथिक हूँ।" यह कहकर उन्होंने अपने गले का बहुमूल्य रत्न-हार उतार कर उसके पास भेज दिया। राजकुमार के गले का हार पाकर कृषा गौतमी अत्यन्त हर्षित हुई, वह समझी, राजकुमार उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गए हैं, और उसे यह प्रेमोपहार भेजा है।

पिता से गृह त्याग की आज्ञा मांगना

इस प्रकार ससार त्याग की भावना और वैराग्य से परिपूर्ण-हृदय राजकुमार सिद्धार्थ घर आये। किन्तु घर के उस आनन्द महोत्सव में उनका मन तनिक भी अनुरजित नहीं हुआ, उनके चित्त में वैराग्य की तीव्र तरंगे उठकर उन्हें शीघ्र गृहत्याग के लिए विवश करने लगीं। एक दिन उन्होंने विचारा कि चुपके से घर से भाग जाना ठीक नहीं है, पिता जी से इस विषय में अनुमति लेनी चाहिए। वह अपने पिताजी के निकट गये और उनसे नम्रता पूर्वक निवेदन किए कि "भगवन्! आपके पौत्र का जन्म हो गया, अब मुझे गृह-त्याग की आज्ञा दीजिए। क्योंकि ससार के सुखों में मेरा चित्त नहीं रमता, जन्म जरा, मरण, व्याधि के दु ख दूर करने की चिन्ता मुझे व्याकुल किए रहती है। मैं किस प्रकार इनसे निवृत्त होकर सर्वज्ञता और निर्वाण लाभ कर सकूंगा, इसके अन्वेषण के लिए मुझे गृह-त्याग करना अति श्रेयस्कर प्रतीत होता है। मैं आज ही गृह-त्यागी होना चाहता हूँ।

प्राणप्रिय पुत्र के मुख से यह बात सुनते ही महाराज शुद्धोदन अवाक् हो गये। थोड़ी देर निस्तब्ध रहने के बाद वे व्यथित-हृदय और गद्‌गद् स्वर से कहने लगे—'कुमार! यह तुम क्या कहते हो!

तुमको किस बात का दुःख है? किस बात की कमी है? तुम अतुल ऐश्वर्य के स्वामी हो? सहस्रों सुन्दरियाँ अपने मधुर गान और वीणा-वादन से तुम्हें प्रसन्न रखने के लिए व्याकुल रहती हैं। सहस्रों दास-दासी तुम्हारी आज्ञा पालन के लिये तुम्हारा मुख देखा करते हैं। परम गुणवती, रूपवती और विदुषी गोपा तुम्हारी जीवन-सहचरी है। फिर तुम किस लिए गृह त्यागने की इच्छा करते हो? बेटा! तुम्हीं हमारे प्राणों के एक मात्र अवलम्ब हो। तुम्हें देखकर मैं परम सुखी रहता हूँ, मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगा? इसलिये घर छोड़ना उचित नहीं। तुम जो कुछ चाहो, वह यहीं उपस्थित कर दिया जाय।"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी, यदि आप चार बातें मुझे दे सकें, तो मैं गृह-त्याग का संकल्प छोड़ सकता हूँ। मैं कभी मरूँ नहीं, बूढ़ा न होऊँ, रोगी न होऊँ और कभी दरिद्र न होऊँ।"

राजा ने कहा—"बेटा! ये तो सब प्राकृतिक बातें हैं। मनुष्य मात्र के लिये इनका होना आवश्यक है। प्रकृति के नियमों का कौन लंघन कर सकता है! मनुष्य अपने जीवन भर सुखी रहने का केवल प्रयत्न कर सकता है।"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी! मैं उस ज्ञान को प्राप्त करूँगा जिसके द्वारा मैं जरा-मरण-व्याधि से दुःखित जीवों का उद्धार कर सकूँ।"

गृह त्याग

यह बात सारे राज-परिवार में फैल गई। राजा और राज-परिवार के लोग इस समाचार से बहुत दुःखी हुए। राजा को शंका समा गई। उन्होंने पहरा-चौकी का प्रबन्ध किया। राजकुमार से सब लोग सतर्क रहने लगे। इधर महाराज के प्रयत्न से उस दिन से राजकुमार का प्रमोद भवन नृत्य-गान से सब समय परिपूर्ण रहने लगा। देव कन्याओं के समान सुन्दरी ललनाएं स्त्री-सुलभ हाव-भावों से हर

समय उन्हें लुभाने का प्रयत्न करने में लगीं रहीं। किन्तु राजकुमार का हृदय रागादि मलों से मुक्त हो गया था, अतः इस मार-सेना का उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। एक दिन, प्रभात-काल में दैवी प्रेरणा से वशीभूत हुई एक रमणी अपने ललित कंठ से एक प्रभाती गाने लगी, जिसे सुनकर राजकुमार की निद्रा भंग हुई। उस जागरोन्मुख निस्तब्ध प्रभात में वह उस गम्भीर ज्ञान-पूर्ण सगीत को सुनने लगे। सुनते-सुनते उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और संसार की अनित्यता मूर्तिमान होकर उनकी आखों के आगे नाचने लगी। राजकुमार ने उसी समय संकल्प कर लिया कि आज मैं अवश्य गृह-त्याग करूँगा।

उस दिन राहुल कुमार सात दिन के हुये थे। महाराज ने उस दिन विशेष उत्सव किया था। प्रमोद भवन में स्त्रियों का महानृत्य हो रहा था। वे अपनी अनुपम नृत्यकला से राजकुमार का चित्त अपनी ओर आकर्षित करती थीं किन्तु उनका यह प्रयत्न निष्फल हुआ। राजकुमार राग से विरक्त चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो थोड़ी ही देर में सो गये। नर्तकियों ने देखा, राजकुमार तो सो गये, अब हम किसके लिये नाचें-गावें अत. वे भी जहाँ की तहाँ सो गईं। किन्तु थोड़े समय पश्चात् राजकुमार उठे। और अपने पलँग पर आसन मार कर बैठ गये। उस समय उस सुरम्य महाप्रागण में सुगन्धित तैल पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। उनके शीतल शुभ्र प्रकाश में राजकुमार ने देखा—वह सुर सुन्दरियाँ इधर-उधर अचेत पड़ी हैं। किसी के मुँहसे लार बह रही है, कोई अपने दाँत कटकटा रही है, किसी का मुँह खुला है, कोई वर्रा रही है, कोई एसी बेहोश है कि उसको अपने वस्त्रों का कुछ ध्यान नहीं है और वह उसे संभाल नहीं सकती। सब बेखबर सो रही हैं, केवल प्रकाशमान दीपक शूँ-शूँ शब्द से उनकी इस दशा पर हँस रहे हैं। इस दृश्य से राजकुमार का विरक्त भाव और भी द्रढ़ हो गया। उन्हें इन्द्र भवन की तरह सुसज्जित प्रमोद-भवन सड़ी हुई लाशों से परिपूर्ण श्मशान के समान प्रतीत हुआ। वैराग्यके तीव्र वेग से

वह उठ खड़े हुए और महाभिनिष्क्रमण के लिये उद्यत हो गये।

वह उस स्थान पर गये, जहाँ उनका सारथी छंदक रहता था। उन्होंने छंदक को पुकार कर आज्ञा दी—"घोड़ा तैयार करो।" छंदक आज्ञानुसार उस अर्ध-निशा में कथक घोड़े को सजाने लगा। कंथक मानो समझ गया हो कि आज मेरे स्वामी की मुझ पर अंतिम सवारी है। वह व्यथित होकर जोर से हिनहिनाया जिससे नगर गूँज उठा। संसार त्यागने से पूर्व राजकुमार की इच्छा हुई कि अपने पुत्र का मुख एक बार देखकर अपना प्यार उसे दे दें। वह राजकुमारी गोपा के कमरे में गए। दीपकों के उज्ज्वल प्रकाश में उन्होंने देखा, दुग्ध फेन के समान धवल पुष्पों से सुसज्जित शय्या पर राहुल-माता सो रही है, और उसका हाथ पार्श्व में लेटे हुए राहुल-कुमार के मस्तक पर है। उन्होंने चाहा, पुत्र को गोद में ले लें, परन्तु यह सोचकर कि ऐसा करने से गोपा जाग उठेगी, और मेरे गृह त्याग में विघ्न उपस्थित होगा। उन्होंने पुत्र-मोह को जीत लिया। मोह का राजा मार लज्जित हो गया, देवगण हँस दिये। राजकुमार कमरे से निकल आये और प्रमोद-भवन से बाहर होने का विचार करने लगे। यद्यपि महाराज की आज्ञा से महल के फाटक और नगर द्वारों पर सर्वत्र पहरे का कठोर प्रबन्ध था। तिस पर भी पहरेदार और दास-दासी सब गहरी नींद में सोये पाये गये! सुदृढ लौह-द्वार अपने आप खुल गये।

राजकुमार महल से उतरे। 'छंदक' सुसज्जित 'कथक' को लिये खड़ा था। 'कंथक' सामान्य घोड़ा न था। वह कान से पूंछ तक १८ हाथ लम्बा और शङ्ख के समान श्वेत था राजकुमार उस पर सवार हुये। छंदक ने उसकी पूँछ पकड़ ली। इस प्रकार रव-हीन गति से कुमार आषाढ़-पूर्णिमा की उज्ज्वल अर्धनिशा में नगर के महाद्वार से नगर से बाहर हुए। कुशल गवेषी वह बोधिसत्व राजकुमार सिद्धार्थ एक ही रात में शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम इन तीन

राज्यों को पार कर लगभग तीस योजन की दूरी पर **अनोमा** नामक नदी के तट पर पहुँचे।

अनोमा नदी आठ ऋषभ (१२८ हाथ) चौड़ी होकर महावेग से वह रही थी। बोधिसत्व ने कथक को एड़ी लगाई। छदक उसकी पूँछ में लटक गया, कंथक एक ही छलाँग में आकाश मार्ग से नदी पार कर गया। नदी पार करके नरम वालुका पर घोड़े से उतर कर बोधिसत्व ने कहा—"छदक! अब तुम घर लौट जाओ, मैं प्रव्रजित (सन्यासी) हूँगा।" इतना कहकर उन्होंने तलवार से अपने केश कतर डाले, इसके पश्चात् वह अपने वस्त्राभूषण उतारने लगे। उस समय श्रमणों के पहनने योग्य साधारण वस्त्रों को पहनकर अपने राजसी वस्त्राभूषण देते हुये बोधिसत्व ने छदक से कहा—"जाओ, पिता से कहना, बुद्ध होकर मैं उनसे साक्षात्कार करूँगा।"

प्रदक्षिणा और प्रणाम करके छदक लौट पड़ा। कथक को स्वामी वियोग से मर्माहत पीड़ा हुई। शोक से उसका कलेजा फट गया और स्वामी की आँख से ओझल होते ही वह गिर पड़ा, और अपना शरीर त्याग दिया! कंथक की मृत्यु से दोहरी चोट खाकर छंदक अत्यन्त दु खित हुआ। किन्तु स्वामी की आज्ञा पालन का भार उस पर था, इसीलिये रोता-विलाप करता, नगर को वापस आया।

अनुसंधान के पथ पर

इस प्रकार प्रव्रजित हो बोधिसत्त्व सिद्धार्थ ने उसी प्रदेश के **अनुपिया** नामक आम्रवन में एक सप्ताह विताया। उसके बाद वह **रैवत** नामक एक ऋषि से मिले और वहाँ से **राजगृह** (जिला पटना) को चल दिये। मगध की राजधानी राजगृह पहुँचकर बोधिसत्त्व भिक्षा के लिये निकले। उनका अनुपम सौंदर्य देखकर नगरवासी स्तब्ध रह गये।

यह कोई देवता हैं, या कोई ऋद्धिमत पुरुष हैं, मनुष्य तो प्रतीत नहीं होते—ऐसा अलौकिक रूप तो मनुष्य का नहीं हो सकता, इस प्रकार की चर्चा करते हुए सभी उनको भिक्षा देने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु महापुरुष सिद्धार्थ ने "बस, इतना मेरे लिये पर्याप्त है।" कहकर थोड़ी सी भिक्षा ग्रहण की और शीघ्र ही नगर से बाहर चले गये।। पाण्डव पर्वत की छाया में बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनकी आत उलट कर मुँह से निकलती जैसी मालूम पड़ी। उस दिन से पूर्व ऐसे भोजन से परिचित न होने के कारण, उस प्रतिकूल भोजन से दुःखित हुए अपने आपको, उन्होंने यों समझाया:—

"सिद्धार्थ! तू अन्न-पान सुलभ कुल में तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान में पैदा होकर भी गुदरीधारी भिक्षु को देख कर सोचता था कि मैं भी कभी इस तरह भिक्षु बन कर भिक्षा मागकर खाऊँगा। क्या वह समय था? और यही सोचकर घरसे निकला भी था। अब यह क्या कर रहा है?' इस प्रकार अपने ही आपको समझा कर निर्विकार हो भोजन किया। राजकर्मचारियों ने यह समाचार राजाको दिया। **महाराज विंबिसार** को उनके दर्शनों की इच्छा हुई। दूसरे दिन जब बोधिसत्व भिक्षा के लिये नगर में आये, तो महाराज विबिम्बसार ने उन्हें उत्तम भिक्षा भिजवाई। बोधिसत्व उसे लेकर नगर के बाहर **पांडव (रत्नकूट)** पर्वत के निकट चले गये और वहीं, पर्वत की छाया में, भोजन किया। महाराज विंबिसार ने वहीं जाकर उनके दर्शन किये और उनसे प्रार्थना की—"महाराज! मेरा यह समस्त मगध-राज्य आपके चरणों में समर्पित है। आप यहीं रहिये और चल कर राज-प्रासाद में वास कीजिये।' बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"महाराज! यदि राज्य सुख भोगने की मुझे इच्छा होती, तो मैं अपने ज्ञाति बन्धुओं का स्वदेश ही क्यों छोड़ता? सांसारिक भोगों को मैंने त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की है, मैं अब बुद्धत्व ज्ञान लाभ करूँगा। यह सुनकर महाराज चुप हो गये, और

नम्रता पूर्वक निवेदन किया—"बुद्धत्व ज्ञान लाभ करके आप मुझे अवश्य अपने दर्शन देकर कृतार्थ कीजियेगा। बोधिसत्व ने महाराज की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार राजा से वचनबद्ध होकर बोधिसत्व मगध के तत्कालीन सुविख्यात विद्वान **आचार्य आलाम कालाम** के आश्रम में गये। आश्रम में उस समय तीन सौ विद्यार्थी अध्ययन करते थे। आचार्य ने बोधिसत्व का प्रेमपूर्ण स्वागत करते हुए उनसे अपने निकट रहने का अनुरोध किया। बोधिसत्व ने कुछ काल उनके पास रहकर उनसे 'समाधि-तत्व' को सीखा। किंतु समाधि भावना को सम्यक सबोधि के लिए अपर्याप्त समझ आचार्य से विदा होकर परमतत्व की प्राप्ति के लिए खोज में आगे बढे और दूसरे सुप्रसिद्ध दार्शनिक **उद्दालक पुत्र आचार्य रुद्रक** के पास गये। आचार्य रुद्रक के आश्रम में सात सौ विद्यार्थी दर्शन शास्त्रका अध्ययन करते थे। आचार्य ने भी बोधिसत्व से अत्यन्त प्रेम भाव से आश्रम में रहने का अनुरोध किया। बोधिसत्व ने आचार्य के पास रह कर अभिसबोधि की जिज्ञासा की। आचार्य ने क्रमशः अपने समस्त दार्शनिक ज्ञान का निरूपण किया, किन्तु बोधिसत्व ने उसे सम्यक सबोधि के लिए अपूर्ण समझ कर आचार्य से विदा ली। बोधिसत्व की प्रखर प्रतिभा और अनुपम जिज्ञासा देखकर उस आश्रम के ५ अन्य ब्रह्मचारी भी उनके साथ हो लिए। ये पाचों ब्रह्मचारी बड़े ही कुलीन थे, इन्हें बौद्ध ग्रंथों में "पञ्चवर्गीय ब्रह्मचारी" लिखा गया है। ये कौंडिन्य आदि पाचों ब्रह्मचारी बोधिसत्व को अलौकिक पुरुष समझ कर उनकी सेवा और परिचर्यादि के द्वारा उनकी झाड़ू-बरदारी में लगे रहे।

तपश्चर्या

आचार्य रुद्रक के आश्रम से चलकर कई दिनों में बोधिसत्व गया में **गयाशीर्ष** पर्वत पर पहुँचे। वहा विहार करते हुए उन्होंने स्थिर किया

कि प्रज्ञालाभ करने के लिए तप करना चाहिए। अतएव तप के लिए उपयुक्त स्थान की खोज करते हुये वे **उरुवेला** प्रदेश में पहुँचे। यह स्थान **निरंजना** (फल्गू) नदी के निकट है। इसे अत्यन्त रमणीक और तप के योग्य स्थान समझकर बोधिसत्व ने वहीं आसन जमा दिया और तप करने लगे। उन्हें तप-निरत देखकर कौंडिन्य आदि पांचो ब्रह्मचारी उनकी परिचर्या करने लगे।

उन्होंने वहीं छः वर्ष तक दुष्कर तप किया। कुछ काल तक वह अक्षत चावल और तिल खाकर रहे। फिर उसे भी त्यागकर अनशन व्रत करके केवल जल पीकर रहने लगे। इस कठोर तप से उनका कंचन-वर्ण शरीर सूखकर काला हो गया। वह केवल अस्ति पजर मात्र रह गया, आखें गढे में घुस गई और नाक-कान के रंध सूख कर आर पार दिखने लगे। शरीर केवल हड्डियों का कंकाल दिखायी देने लग गया। वह रेचक, कुम्भक, पूरक तीन प्रकार की प्राण-क्रियाओं से परे प्राण-शून्य (श्वास-रहित) ध्यान करने लगे। इस महाकठिन ध्यान से अत्यन्त क्लेश-पीड़ित हो एक दिन मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। ब्रह्मचारियों ने समझा वह मर गया है, किंतु वह उस समय समाधि की समस्त भूमियों का अतिक्रम करके असंप्रज्ञात निर्बीज समाधि से परे एक अनिर्वचनीय महाशून्य-समाधि में विहार करते थे। उन अत्यन्त अगम महासमाधि से निकल कर जब वह क्रमश संप्रज्ञात-समाधिभूमि में आए, तो निश्चय किया कि "कठोर तप से बुद्धत्व लाभ नहीं होगा। सर्वज्ञता लाभ का यह मार्ग नहीं है। अत्यन्त काय-क्लेश और अत्यन्त सुख दोनों का त्याग करके **मध्यम मार्ग** का अनुगमन करके सयमी जीवन-यापन करना ही समीचीन है।" ऐसा निश्चय करके उन्होंने संकेत द्वारा ब्रह्मचारियों से सूक्ष्माहार की इच्छा प्रकट की। ब्रह्मचारी उन्हें क्रमशः जल और मूंग का जूस देने लगे। धीरे धीरे जब उनके शरीर में बल का संचार हुआ तब वह ग्रामों में जाकर भिक्षाचर्या करने लगे। उस समय वह पांचों ब्रह्मचारी यह सोचकर कि जब तप से

इन्हें प्रज्ञा लाभ नहीं हुई, तब अब भोजन करने से कैसे लाभ होगी, उनका साथ छोड़कर वहा से १८ योजन दूर, **ऋषिपत्तन** (वर्तमान सारनाथ, बनारस) चले गए।

सुजाता का खीर दान

उस समय उरुवेल-प्रदेश के **सेनानी-ग्राम** में सेनानी-नामक कुनबी-परिवार की **सुजाता** नामक एक कन्या ने एक वट-वृक्ष से यह प्रार्थना की थी कि वय प्राप्त होने पर यदि उसका विवाह किसी अच्छे घर में उसी के समान सुन्दर और सुयोग्य वर के साथ होगा, और पहले ही गर्भ में यदि उसे सुन्दर पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी तो वह प्रतिवर्ष **वैशाख पूर्णिमा** को वट देवता की सहस्र-खर्व खीर से बलिपूजा करेगी। उसकी वह कामना पूरी हुई और उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वट-देवता की पूजा को तैयारी की। फिर वैशाख-पूर्णिमा के दिन प्रभात काल में अपनी कपिला गायों को दुहराया, और उनके उस अत्यन्त मधुर गाढे और पुष्टिकर दूध को चाँदी के नये वर्तन में लेकर आग जला उसने अपने हाथ से अक्षत चावलों की खीर बनाना आरम्भ किया।

जिस समय वह खीर बना रही थी, उसने अपनी **पूर्णा** नाम की दासी को उस वट वृक्ष के नीचे स्थान स्वच्छ कर आने को भेजा जहाँ वह पूजा के लिए जानेवाली थी। पूर्णा जिस समय स्थान परिष्कार करने के लिए वटवृक्ष के नीचे पहुँची, उस समय उसने वहा पद्मासन से विराजमान बोधिसत्व को देखा और उसने यह भी देखा कि बोधिसत्व के कंचनवर्ण शरीर से एक दिव्य आभा का विकास हो रहा है, जिसमें वह समस्त वट वृक्ष समालोकित हो रहा है। पूर्णा ने समझा कि मेरी स्वामिनी की पूजा ग्रहण करने के लिए वह देवता वृक्ष से उतर कर साक्षात् बैठे हैं और पूजा की प्रतिक्षा कर रहे हैं। अत्यन्त हर्षित हो जल्दी से जाकर वह शुभ-संवाद उसने अपनी स्वामिनी को सुनाया।

वह देवता उसकी पूजा ग्रहण करने के लिए बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह सुनकर सुजाता भी आनद से उन्मत्त हो उठी। और कहा "अगर यह बात सही है तो तू आज से मेरी ज्येष्ठ पुत्री होकर रह" कह कर एक ज्येष्ठ पुत्री के योग्य वस्त्रभूषण आदि उसको दिये।

सुजाता पुनीत प्रेम और विशुद्ध श्रद्धा से तैयार की हुई उत्तम खीर को एक लक्ष मुद्रा के मूल्य के एक अति उत्तम सुवर्ण के थाल में परोसा, और ढक्कन से ढक कर एक स्वच्छ वस्त्र में बाध दिया। फिर स्नान करके सुन्दर वस्त्राभूषणों को पहन कर थाल को अपने सिर पर रखकर पूर्णा के साथ उस वृक्ष के नीचे गई। वहाँ बोधिसत्त्व को दिव्य आभा वितरण करते हुए विराजमान देखकर वह अत्यन्त आनन्दित हुई और वट देवता समझ सिर से थाल उतारकर माथा झुका दूर ही से प्रणाम किया। फिर थाल को खोल एक हाथ में थाल और दूसरे में सुगंधित पुष्पों से सुवासित स्वर्णमय जलपात्र लेकर वह बोधिसत्त्व के निकट जा कर खड़ी हुई और देवता से भेंट ग्रहण करने की भावना करने लगी।

अत्यन्त दुष्कर तपश्चर्या से क्षीण काय एवं अलौकिक तेज विशिष्ट बोधिसत्त्व ने सुजाता की भावना को तुरन्त समझ लिया। वह उस श्रद्धापूर्ण भेंट को ग्रहण करने के लिए अपना भिक्षापात्र उठाने लगे, किन्तु अपना भिक्षापात्र न देखकर प्रेम पुलकित सुजाता का वह थाल सहित खीर और जल पात्र ग्रहण करने के लिएबोधिसत्त्व ने अपने दोनों हाथ फैलाए। महाभाग्यवती सुजाता ने पात्र-सहित खीर को महापुरुष के कर-कमलों में अर्पण किया। बोधिसत्त्व ने सुजाता की ओर अमृत-मय दृष्टि से देखा। सुजाता समझी, देवता वर मागने को कह रहे हैं। वह बोली—'देव! आपके प्रसाद से मेरी मनोकामना पूर्ण हुई है। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मेरी कामना पूर्ण होने पर मैं सहस्र गो खर्च से खीर बनाकर आपको अर्पण करूंगी। कृपा करके मेरी इस भेंट को ग्रहण कीजिए और इसे लेकर यथारुचि स्थान को पधारिए। जैसा

मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है वैसे ही आपका भी पूर्ण हो" अहा! भक्ति विह्वल नारी का मातृ हृदय वर मागने की जगह आशीर्वाद देने लगा! बोधिसत्त्व ने ईषत् मुसकान से उसका आशीर्वाद ग्रहण किया। भूरिभागा सुजाता पात्र-सहित खीर दान करके अपने घर चली गई।

बोधिसत्त्व ने पिछली रात को ही कई लक्षणों को देखकर निश्चय किया था कि आज मैं अवश्य बुद्धत्त्व-लाभ करूंगा। अतः रात बीतने पर प्रभात-काल ही, शौच आदि से निवृत्त हो वह उस वट वृक्ष के नीचे आकर बैठे थे और भिक्षाकाल की प्रतीक्षा कर रहे थे जिस समय बोधिसत्त्व इस प्रकार बैठे हुए भिक्षार्थ बस्ती में जाने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, उसी समय पूर्णा ने आकर उनके दर्शन किए, और 'मेरी स्वामिनी आप की पूजा के लिए बलि- सामग्री लेकर आ रही है" कहकर चली गई, और फिर सुजाता ने आकर खीर दान किया।

बुद्ध पद का लाभ

सुजाता प्रदत्त क्षीर का भोजन करने के बाद दिन का शेष समय पास की उन वृक्षों की कुञ्ज में बिता कर सायकाल बोधिसत्त्व बोधि-वृक्ष (पीपल) के मूल में आये।

उसी समय श्रोत्रिय नामक घसियारा घर जाता हुआ उधर से आ निकला। और स्वभावानुसार बोधिसत्त्व का तृणों का आसन सूखा हुआ देख नई तृण की आठ मुष्टि दी। बोधिसत्त्व ने उस तृण को वृक्ष मूल में छिपा वृक्ष की ओर पीठ कर दृढ़ चित्त हो यह सोच कर कि—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें ही क्यों न बाकी रह जाय। चाहे शरीर मास, रक्त क्यों न सूख जाय, लेकिन तो भी अपनी इच्छित परम ज्ञान सम्यक सम्बोधि को प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं

उस बोधिसत्व को नाना प्रकार की प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक दुश्चिन्ताओं ने आ घेरा परन्तु वे दुश्चिन्ताए उन्हें अपने ध्येय से हटा न सकीं ।

इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य के रहते-रहते **मार** की उस सेना को परास्त किया ।

ध्यान रत, एकान्त-चित्त, दृढ-प्रतिज्ञ उस महापुरुष बोधिसत्व ने उस रात्रि के प्रथम याम में अद्भुत-दिव्य दृष्टिपाई । द्वितीय याम में पूर्वानुस्मृति ज्ञान तथा अन्तिम याम में उन्होंने कार्य कारण पर आधारित अपना द्वादश प्रतीत्य समुत्पाद का आविष्कार कर साक्षात्कार किया ।

उन्होंने अपने बारह पदों के प्रत्यय-स्वरूप **प्रतीत्य समुत्पाद** को आवर्त-विवर्त की दृष्टि से **अनुलोम** आदि से अन्त की ओर, **प्रतिमोल** अन्त से आदि की ओर मनन किया कि—

"अविद्या के कारण सस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम रूप, नाम-रूप के कारण छ· आयतन, छ आयतनों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जाति, जाति अर्थात् जन्म के कारण जरा (=बुढापा) मरण, शोक, रोना, पीटना, दु.ख, चित्त विकार और चित्त खेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह यह संसार जो (केवल) दु खों का पुंज है, उसकी उत्पत्ति होती है । अविद्या के अ-शेष (=बिलकुल) विराग से, अविद्या का नाश होने पर संस्कार का विनाश होता है । सस्कार विनाश से विज्ञान का नाश होता है । विज्ञान-नाश से नाम-रूप का नाश होता है । नाम-रूप नाश से छः आयतनों का नाश होता है । छः आयतनों के नाश से स्पर्श-नाश होता है । स्पर्श-नाश से वेदना-नाश होता है । वेदना-नाश से तृष्णा-नाश होता है । तृष्णा-नाश से उपादान-नाश होता है । उपादान-नाश से भव-नाश होता है । भव-नाश से जाति-नाश होता है । जन्म के नाश से जरा, मरण, शोक रोना-पीटना, दु ख, चित्त-

विकार और चित्त-खेद नष्ट होता है। इस प्रकार इस केवल दुःख-पुंज का नाश होता है।"

इस प्रकार विचार करते हुए बुद्ध ने दिन की लाली फटते समय बुद्धत्त्व (=सर्वज्ञता) ज्ञान का साक्षात्कार किया। उस समय उन्होंने यह उदान वाक्य कहा :—

> अनेक जाति ससारं संधाविस्सं अनिब्बिसं
> गहकारं गवेस्संतो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।
> गहकारक दिट्ठोसी पुन गेहं न काहसि
> सब्बाते फासुका भग्गा गहकूटं विसंङ्खतं।
> विसङ्खार गतं चित्तं तण्हानं खय मज्झगा॥

"दुःखदायी जन्म वार वार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह कारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया। अब तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण को प्राप्त हो गया। तृष्णा का क्षय देख लिया।"

इस उदान वाक्य (प्रीति वाक्य) को कहकर वहीं बैठे भगवान तथागत बुद्ध के मन में हुआ—मैं इस बुद्ध आशन के लिये असख्य काल तक दौड़ता रहा। इसी आसन के लिये मैंने इतने समय तक प्रयत्नशील रहा। अतः मेरा यह आसन जय-आसन है। श्रेष्ठासन है। यहाँ इस आसन पर बैठे मेरे संकल्प पूरे हुए हैं। अभी मैं यहाँ से नहीं उठूँगा। यही सोच ध्यानों में रह, सप्ताह भर एक ही आसन से विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे।

फिर असंख्य काल में पूरी की गई **पारमिताओं** को, फल प्राप्ति के स्थान को निर्निमेष दृष्टि से देखते एक सप्ताह विताया। इसी स्थान का नाम पश्चात काल में **अनिमिस चेतीय** (अनिमेष चैत्य) हो गया।

तब वज्र आसन और खड़े होने के बीच की भूमि को चंक्रमण भूमि

बना, पूर्व से पश्चिम को रतन-भर चौड़े, रत्न-चंक्रमण पर चंक्रमण करते हुए सप्ताह विताथा । उस स्थान का नाम **"रत्न-चंक्रमण चैतीय"** पड़ा ।

चौथे सप्ताह में वहीं आसन पर वैठे, अभिधर्म को विचारते हुए सप्ताह विताया । इसके वाद वह स्थान **'रत्नघर चैत्य'** के नाम से कहलाने लगा।

इस प्रकार वोधि-वृक्ष के समीप चार सप्ताह विताकर पाँचवे सप्ताह वोधि-वृक्ष से चलकर जहाँ **अजपाल बरगद** (=न्यग्रोध) है, वहाँ चले गये । वहाँ भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्ति सुख का आनन्द लेते ही बैठे रहे । फिर **मुचलिन्द** नामक एक वृक्ष के और फिर **राजा-यतन** वृक्ष के नीचे आसन लगाकर ध्यान-रत हो विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए वैठे । इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए । इन **सप्त सप्ताहों** में भगवान् ने न मुख धोया, न शरीर-शुद्धि की और न भोजन ही किया । सारे समय को ध्यान सुख, मार्ग सुख और फल प्राप्ति के सुख में ही व्यतीत किया ।

धर्म-प्रचार

उस समय तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारी पाँच सौ गाड़ियों के साथ उत्कल देश से **मध्य-देश** (पश्चिम-देश) को जा रहे थे । रास्ते में भगवान् को देख उनसे प्रभावित हुए और भगवान को आहार देने के लिये अनुप्रेरित हो वे **सत्तू और मधुपिण्ड** (पूए) ले, शास्ता के पास जाकर प्रार्थना की "भन्ते ! भगवान् ! कृपा करके इस आहार को ग्रहण करें ।" भगवान् के भोजन ग्रहण करने के उपरान्त उन दोनों भाइयों ने बुद्ध और धर्म की शरण ग्रहण कर **दो वचन से** तथागत के शासन के प्रथम उपासक हुए।

भिक्षुओ ! स्वयं जन्मने के स्वभाव वाले मैंने जन्मने के दुष्परिणाम को जानकर अजन्मा, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को खोजता अजन्मा,

अनुपम योगक्षेम निर्वाण को पा लिया। स्वय जरा-धर्म वाला होते हुए भी मैंने जरा धर्म के दुष्परिणाम को जानकर जरा रहित, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को खोज, अजर, अनुपम, योगक्षेम निर्वाण को पा लिया। स्वय व्याधि-धर्मा हो, व्याधि-धर्म रहित हो, स्वयं मरण-धर्मा हो, मरण धर्म रहित, स्वय शोक धर्म वाला हो शोक रहित, स्वयं सक्लेश (= मल) युक्त हो सक्लेश रहित हो गया। मुझे ज्ञान-दर्शन (साक्षात्कार) हो गया। मेरे चित्त की विमुक्ति अचल हो गई। यह अन्तिम जन्म है, अब फिर मेरा दूसरा जन्म नहीं होगा।

तब भिक्षुओं ! मुझे ऐसा हुआ —

"मैंने गम्भीर, दुर्दर्शन, दुर-ज्ञेय, शान्त, उत्तम, तर्क के द्वारा अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्म को पा लिया। वह जनता काम तृष्णा (आलय) में रमण करने वाली, काम-रत, काम में प्रसन्न है। काम में रमण करने वाली इस जनता के लिये, यह जो कार्य कारण पर आधारित प्रतीत्य-समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है, यह जो सभी संस्कारों का शमन, सभी मन्त्रों का परित्याग, तृष्णाक्षय, विराग, निरोध (दु ख निरोध) और निर्वाण है। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे इसको समझ न पावें तो मेरे लिये यह तरद्दुद और पीड़ा मात्रा होगी।

उसी समय मुझे कभी न सुनी यह अद्भुत गाथाएँ सूझ पड़ी—

यह धर्म पाया कष्ट से, इसका युक्त न प्रकाशना।
नहीं राग-द्वेष-प्रलिप्त को है, सुकर इसका जानना॥
गभीर उल्टी-धार-युत दुर्दश्य सूक्ष्म प्रवीण का।
तम-पुंज छादित राग-रत द्वारा न सम्भव देशना॥

ऐसा समझने के कारण, मेरा चित्त धर्म प्रचार की ओर न झुक अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

तब बुद्ध चक्षु से लोक को देखते हुए मैंने जीवों को देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझने में सुगम,

प्राणियों को भी देखा। उनमें से कोई परलोक और दोष से भय करते विहर रहे थे। (क्योंकि) जैसे उत्पलिनी, पद्मनी या पुण्डरीकिनी में से कितने ही उत्पल, पद्म या पुण्डरीक जल में पैदा हो उससे बंधे उससे वाहर न निकल जल के ही भीतर डूब कर पोषित होते हैं और कोई-कोई जल में पैदा होने पर भी उससे ऊपर उठकर जल से अलिप्त ही खड़े हो जाते हैं। उसी आकार तथागत ने भी मनुष्यों में देखा।"—(विनय पिटक)

सरनाथ बनारस के रास्ते पर

अनन्तर शास्ता ने विचारा कि इस प्रकार अनेक कठिनाइयों के अनन्तर प्राप्त इस नये धर्म का प्रथम अधिकारी कौन हो ? कौन पुरुष है ? जो इसे शीघ्र समझ सकेगा ? विचार आया आलार कालाम। पर सोचकर देखा कि उन्हें मरे हुए एक सप्ताह हो गया है तव रुद्रक रामपुत्र का विचार आया। मालूम हुआ, वे भी उसी रात को मर गये। तव पचवर्गीय भिक्षुओं के वारे में प्रश्न हुआ। वे लोग इस समय कहां है, उन भिक्षुओं ने साधना के समय वहुत तरह से उपकार किया है, सोचते हुए, वाराणसी (वनारस के) मृगदाय में विहरने की वात मालूम कर, वहा जाकर धर्म प्रकाशन करने का भगवान् ने विचार किया।

कुछ दिन तक (गया के) वोधिमण्डल के आस पास ही भिक्षाचार कर विहार करते रहे। आषाढ पूर्णिमा के दिन मृगदाय पहुँचने के विचार से, चतुर्दशी को प्रात.काल तड़के ही चीवर पहन पात्र हाथ में ले अठारह योजन के मार्ग पर चल पडे। रास्ते में उपक नामक एक आजीवक को उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए अपने बुद्ध होने की वात कहकर, उसी दिन शाम को ऋषिपतन-मृगदाय पहुँच गये।

पंचवर्गीय भिक्षुओं ने तथागत को आते दूर से ही देखकर निश्चय किया—"आयुष्मानो! यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ

के लिये मार्ग-भ्रष्ट हो परिपूर्ण शरीर, मोटी इंद्रियों वाला, सुवर्ण वर्ण होकर आ रहा है। हम उसे अभिवादन-प्रत्युत्थान आदि न करेंगे। लेकिन एक महाकुल-प्रसूत होने से यह आसन का अधिकारी है, अत हम इस के लिये खाली आसन विछा देगें।"

भगवान् के मैत्री-चित्त से प्रभावित हो उनके समीप आते आते वे अपने निश्चय पर दृढ न रह सके और उन्होंने अभिवादन-प्रत्युत्थान आदि सब कृत्यों को किया, लेकिन सम्बोधि प्राप्ति के प्रयत्न में सफल होने का उन पचवर्गीय भिक्षुओं को ज्ञान न था। इसलिये वे तथागत को केवल नाम लेकर अथवा आवुसो (आयुष्मान्) कहकर सम्बोधन करते थे।

तव भगवान् ने उनसे कहा, भिक्षुओ! तथागत को नाम से अथवा 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् है, सम्यक सम्बुद्ध हैं" ऐसा कहकर तथागत ने अपने बुद्ध होने को प्रकट किया तथा विछे आसन पर वैठ, उत्तराषाढ-नक्षत्र (आषाढी पूर्णिमा के दिन) पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को सम्बोधित कर **धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र** का उपदेश किया।

सारनाथ में प्रथम उपदेश

धर्मचक्र प्रवर्तन-सूत्र

और फिर भगवान् ने उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को सम्बोधित किया —

दो अन्त

"भिक्षुओं ! इन दो अन्तों (=चरम बातों) को प्रव्रजितों को नहीं सेवन करना चाहिए—(१) जो यह हीन, ग्राम्य, पृथक् जनों के योग्य, अनार्य जन सेवित, अनर्थों से युक्त काम वासनाओं में काम-सुख-लिप्त होना है और (२) जो यह दुःखमय, अनार्य (=सेवित), अनर्थों से युक्त, आत्म-पीड़न(=काय क्लेश) में लगना है। भिक्षुओं ! इन दोनों अन्तों (=चरम बातों) में न जाकर तथागत ने मध्यम मार्ग को जाना है, जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिए अभिज्ञा के लिए, सम्बोधि (=परम ज्ञान) के लिये, निर्वाण के लिये है।

मध्यम मार्ग

भिक्षुओं ! तथागत ने कौन सा मध्यम मार्ग जाना है जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, सम्बोधि के लिये, निर्वाण के लिये है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, जैसे कि—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (=प्रयत्न) (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि। भिक्षुओं ! इस मध्यम मार्ग को तथागत ने जाना है जो कि आँख देने वाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिए, सम्बोधि के लिए निर्वाण के लिये है।

१—दुःख आर्य सत्य

भिक्षुओं! यह दुःख आर्य-सत्य है-जन्म भी दुःख है, जरा (=बुढापा) भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मृत्यु भी दुःख है, अप्रियों से संयोग (=मिलन) दुःख है, प्रियों से वियोग दुःख है। ईच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। संक्षेप में पाँच उपादान स्कन्ध* ही दुःख हैं।

२—दुःख-समुदय आर्य सत्य

भिक्षुओं! यह दुःख-समुदय आर्य सत्य है—यह जो फिर-फिर जन्म करानेवाली प्रीति और राग से युक्त, उत्पन्न हुए स्थानों में अभिनन्दन कराने वाली तृष्णा है, जैसे कि (१) काम-तृष्णा (२) भव-तृष्णा (=जन्म-सम्बन्धी तृष्णा) (३) विभव-तृष्णा (=उच्छेद की तृष्णा)

३—दुःख-निरोध आर्य सत्य

भिक्षुओं! यह दुःख-निरोध आर्य सत्य है— जो उसी तृष्णा का सर्वथा विराग है, निरोध (=रुक जाना), त्याग, प्रतिनिस्सर्ग (=निकास), मुक्ति (=छुटकारा), लीन न होना है।

४—दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा आर्य सत्य

भिक्षुओं! यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य है— यही आर्य अष्टांगिक मार्ग जैसे कि एक (१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधि।

चार आर्य सत्यो का तेहरा ज्ञान दर्शन

(१) 'यह दुःख आर्य सत्य है'—भिक्षुओं! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई,

---

*रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—ये पाँच उपादान स्कन्ध कहलाते हैं।

विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख आर्य सत्य परिज्ञेय है'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दु ख आर्य सत्य परिज्ञात है'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले न सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

(२) 'यह दुःख समुदय आर्य सत्य है'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न ई, ज्ञान उत्पन्न आ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख समुदय-आर्य सत्य महातव्य (त्याज्य छोड़ने योग्य) है'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न आ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

(३) 'यह दु.ख निरोध आर्य सत्य है'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दुःख निरोध आर्य सत्य 'साक्षात्कार कर लिया'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख निरोध आर्य सत्य 'साक्षात्कार कर लिया'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञाव उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ।

(४) 'यह दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य है'—भिक्षुओ! यह मुझे पहले नहीं सुने गये धर्मों में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। यह दु ख

उरूवेल वासी ! तपः कृशों के उपदेशक ! क्या देखकर तुमने आग छोड़ी ? काश्यप ! तुमसे यह बात पूछता हूं, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा ?

"रूप, शब्द, रस, कामोपभोग तथा स्त्रियां ये सब यज्ञ से मिलती हैं, ऐसा कहते हैं। लेकिन उक्त रागादि ये उपाधियां मल हैं। यह जानकर, विरक्त चित्त हो, मैंने यज्ञ करना तथा हवन करना छोड़ दिया।"

"काम मद में अविद्यमान, निर्लेप, शान्त रागादि से रहित निर्वाण पद को देखकर निर्विकार ! दूसरे की सहायता से पार होने वाले (निर्वाण) पद को, देखकर मैं इष्ट और यज्ञ तथा होम से विरक्त हुआ।"

ऐसा कहने के अनन्तर (अपने शिष्य भाव के प्रकाशनार्थ) वह स्थविर आसन से उठ, उरत्तरासंग को एक कंधे पर कर भगवान् के पैरों पर शिर रख भगवान् से बोले—"भन्ते ! भगवान् मेरे गुरू हैं। मैं शिष्य हूँ। इस प्रकार तथागत को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। प्रचार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "अहो बुद्ध, महाप्रतापी हैं। जिन तथागत ने इस प्रकार के दुराग्रही, अपने को अर्हत् समझने वाले, उरूवेल काश्यप को भी उनके मद रूपी जाल को काटकर दीक्षित किया।" भगवान् ने इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिये **महानारद काश्यप जातक** कह चार आर्य सत्यों का प्रकाश किया। जिसे सुन ग्यारह नहुत ब्राह्मण गृहपतियों सहित मगध राज श्रेणिक विम्बिसार को उसी आसन पर जा कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशवान हैं।' यह विरज-विमल-धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। और वे ग्यारह नहुत ब्राह्मण उपासक बन गये।

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

उस समय संजय नामक एक परिव्राजक राजगृह में कोई ढाई सौ परिव्राजकों की एक बड़ी जमात के साथ निवास करता था। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन संजय के दो प्रमुख शिष्य थे। संजय के सिद्धान्त में पारङ्गत हो वे उससे आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील थे। अत. उन्होंने आपस में प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो भी पहिले अमृत तत्त्व को प्राप्त करेंगे, वह दूसरे से कहेंगे। उस समय पंचवर्गीय भिक्षुओं में से अश्वजित नामक अरहन्त भिक्षु भिक्षाचार के लिए पूर्वाह्न में राजगृह में घूम रहे थे। अवलोकन-विलोकन के साथ नीची नजर रखते संयम से भिक्षाचार में रत अश्वजिन भिक्षु को देख सारिपुत्र परिव्राजक को हुआ जिस तत्व ज्ञान की हम खोज में हैं वह तत्व ज्ञान प्राप्त अथवा उसकी प्राप्ति के मार्ग पर "लोक में जो आरूढ है, उनमें यह भिक्षु भी है। 'क्यों न इस भिक्षु के पास जाकर पूछूँ ? आवुस् ! तुम किसको गुरु करके घर से बेघर हुए हो ? कौन तुम्हारा गुरु है ! तुम किसके धर्म को मानते हो ?" पर उनके भिक्षाचार का समय होने से कुछ न बोल उनके निवृत्त हो जाने तक उनका अनुगमन करते रहे।

आयुष्मान् अश्वजित राजगृह में भिक्षा ले, चले गये। तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् अश्वजित थे वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् अश्वजित के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खड़ा हो गया। खडे होकर सारिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान् अश्वजित से कहा—

"आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं। तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्ज्वल है। आवुस ? तुम किसको गुरु करके साधु हुए हो, तुम्हारा गुरु कौन है ? तुम किसका धर्म मानते हो ?"

"आवुस ! शाक्य कुल से प्रव्रजित शाक्य पुत्र महाश्रमण जो हैं, उन्हीं भगवान् को गुरु करके मैं साधु हुआ हूँ, वही भगवान् मेरे गुरु हैं। उन्हीं भगवान् का मैं धर्म मानता हूँ।"

"आयुष्मान के गुरु का क्या मत है? किस सिद्धान्त को वह मानते हैं?"

"आवुस! मैं नया हूँ। इस धर्म में अभी नया ही साधु हुआ हूँ, विस्तार से मैं तुम्हें नहीं बतला सकता, इसलिए संक्षेप में तुमसे कहता हूँ।"

"तब सारिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान अश्वजित से कहा, अच्छा आवुस! थोड़ा बहुत जो हो कहो, सार ही को मुझे बतलाओ।" सार से ही मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे बहुत सा विस्तार कहकर।"

तब आयुष्मान् अश्वजित ने सारिपुत्र परिव्राजक से यह धर्म-पर्याय (उपदेश) कहा—

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
ते सञ्च यो निरोधो, एवं वादि महासमणो'ति॥

"हेतु (कारण) से उत्पन्न होने वाली जितनी वस्तुयें हैं, उनका हेतु है; यह तथागत बतलाते हैं। उनका जो निरोध है उसको भी बतलाते हैं, यही महाश्रमण का वाद है।"

तब सारिपुत्र परिव्राजक को इस धर्म-पर्याय के सुनने से—"जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशमान् है," यह विरज = विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। यही धर्म है जिससे कि **शोक रहित पद** प्राप्त किया जा सकता है।

तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मौद्‌गल्यायन परिव्राजक था, वहाँ गया। मौद्‌गल्यायन परिव्राजक ने दूर से ही सारिपुत्र परिव्राजक को आते देखकर सारिपुत्र परिव्राजक से कहा—"आवुस? तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्ज्वल है। तूने आवुस! अमृत तो नहीं पा लिया!

"हाँ, आवुस! अमृत पा लिया।"

"आवुस! कैसे तूने अमृत पाया?"

"आवुस! मैंने आज अश्वजित भिक्षु को राजगृह में अति सुन्दर

ढंग से अवलोकन-विलोकन के साथ भिक्षा के लिए घूमते देखकर सोचा 'लोक में जो अर्हत हैं, यह भिक्षु उनमें से एक है।' मैंने अश्वजित से पूछा—तुम्हारा गुरु कौन है? अश्वजित ने यह धर्म पर्याय कहा···हेतु से उत्पन्न०।

तब मौद्गल्यायन परिव्राजक को इस धर्म-पर्याय के सुनने से—जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह सब नाशमान है"—यह विमल विरज धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ।

मौद्गल्यायन परिव्राजक ने सारिपुत्र परिव्राजक से कहा—चलो चलें आवुस! भगवान् बुद्ध के पास वह हमारे गुरु हैं; और यह जो ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रय से हमें देखकर यहाँ विहार करते हैं, उनसे भी पूछ लें और कह दें कि जैसी तुम लोगों की राय हो वैसा करो।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ वह परिव्राजक थे वहाँ गये, जाकर उन परिव्राजकों से बोले—"आवुसो! हम भगवान बुद्ध के पास जाते हैं वह हमारे गुरु हैं।

उन आयुष्मानों ने उत्तर दिया—

हम आयुष्मानों के आश्रय से—आयुष्मानों को देख कर यहाँ विहार करते हैं। यदि आयुष्मान महाश्रमण के शिष्य होंगे, तो हम भी महाश्रमण के शिष्य होंगे।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन संजय परिव्राजक के पास गये। जाकर संजय परिव्राजक से बोले—

"देव! हम भगवान् के पास जाते हैं, वह हमारे गुरु हैं।"

"नहीं अवुसो! मत जाओ हम तीनों मिलकर इस जमात की महन्ताई करेंगे।"

दूसरी और तीसरी बार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने संजय परिव्राजक से कहा—"हम भगवान् के पास जाते हैं।"

"मत जाओ। हम तीनों मिलकर इस जमात की महन्ताई करेंगे।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकों को ले वेलुवन चले गये। इसे देख सजय परिव्राजक के मुँह से गर्म खून निकल आया।

भगवान् ने दूर से ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को आते हुए देख कर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—

भिक्षुओं! वह जो दो मित्र कोलित (मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (सारिपुत्र) आ रहे हैं। यह मेरे प्रधान शिष्य युगुल होंगे, भद्र युगुल होंगे।

भगवान के पास जाकर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उनके चरणों में शिर झुकाकर बोले—

"भन्ते! हमें अपना शिष्यत्व प्रदान करें।"

"भिक्षुओं! आओ, यह धर्म सुआख्यान है। दुख के क्षय के लिये अच्छी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करो।" कह कर भगवान् ने उन दो महारथियों को दीक्षित किया। जो पश्चात् काल में भगवान् के धर्म सेनापति हुए।

महाराज शुद्धोदन का आह्वान्

भगवान् बुद्ध के धर्म-प्रवर्तन का समाचार भारत में दूर-दूर तक पहुँच गया था। देश के प्रत्येक प्रदेश और प्रत्येक नगर में भगवान् के धर्म-प्रचार की चर्चा थी और धर्म परायण एवं धर्म तत्व के ज्ञाता विद्वान सत्पुरुष दूर-दूर देशों से यात्रा करके भगवान् के निकट धर्म श्रवण करने आते थे। कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन ने भी जब यह सुना कि राजकुमार सिद्धार्थ ने अलौकिक जीवन लाभ किया है और उनके अमृतमय उपदेश को सुनकर सहस्त्र सहस्त्र प्राणी पवित्र और प्रव्रजित हो रहे हैं। पापी लोग भी अपने पापमय जीवन को त्यागकर पुण्यमय जीवन लाभ कर रहे हैं। तब वह अपने प्राणप्रिय अलौकिक पुत्र को देखने की लालसा से अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उन्होंने भगवान् को कपिलवस्तु में बुलाने के लिए नौ बार अपने मंत्रियों को भेजा, परन्तु वे सब भगवान् के निकट पहुँचकर उनके उपदेश से प्रभावित हो उनके भिक्षुसंघ में मिल गए, कोई लौटकर महाराज शुद्धोदन के पास नहीं आया और किसीसे महाराज शुद्धोदन की बात बुद्ध से कहते न बना। अन्त में न गया हुआ मन्त्री ही लौट कर आया है और न कोई समाचार ही सुनाई देता है यह सोचकर राजा ने कालउदायी नामक अपने निजी सहायक (प्राइवेट सेक्रेटरी) को देखा। यह उनकी आन्तिरिक बातों से परिचित अति विश्वासी था और था बोधिसत्व (कुमार सिद्दार्थ) का समवयस्क, एक ही दिन उत्पन्न, साथ का धूलि-खेला मित्र। राजा ने उससे कहा, तात ! कालउदायी ! मै अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ, नौ बार आदमियों को भेजा एक आदमी भी आकर समाचार तक कहने वाला नहीं मिला है। शरीर का कोई ठिकाना नहीं है। मैं जीते जी पुत्र को देख लेना चाहता हूँ। क्या मेरे पुत्र को मुझे दिखा सकोगे ?

"देव ! दिखा सकूँगा, यदि प्रव्रजित बनने की आज्ञा मिले।"

"तात ! तू प्रव्रजित हो या अप्रव्रजित, मेरे पुत्र को लाकर दिखा।"

"देव ! अच्छा" कह वह राजा का संदेश लेकर राजगृह गया और शास्ता के धर्म उपदेश के समय सभा में पहुँचकर अपने साथियों सहित धर्म सुना और अन्त में भिक्षु बनकर रहने लगा।

शास्ता ने बुद्ध होकर पहला वर्षावास ऋषिपतन में विताया। वर्षावास की समाप्ति पर प्रवारणा कर उरुवेला में जा वहाँ तीन मास रहकर तीन जटाधारी काश्यप बन्धुओं को दीक्षित कर भारी भिक्षु परिषद के साथ राजगृह में दो मास निवास किया। इस प्रकार सारा हेमन्त ऋतु समाप्त हो गया।

उदायी स्थविर सोचने लगा कि वसन्त आ गया है। लोगों ने खेत काटकर अवकाश पा लिये है। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित है और *वन खण्ड फूलों से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गए हैं। अत.* यह उपयुक्त समय है, यह सोच भगवान् के पास जाकर इस प्रकार बोले—

"भगवन् ! इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिए नये पत्तों से लदकर अगार वाले जैसे हो गए हैं। उनकी चमक अग्नि-शिखा सी है। महावीर ! ये शाक्यों के संग्रह करने का समय है। इस समय न बहुत शीत हैं, न बहुत ऊष्ण है, न भोजन की कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि ! यह चलने का उत्तम समय है।"

शास्ता ने पूछा—"उदायी ! क्या है जो तुम मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो।"

भगवान् ! आप के पिता महाराज शुद्धोदन आपका दर्शन करना चाहते हैं, आप जाति वालों का संग्रह करें।

"अच्छा, उदायी ! भिक्षु-संघ को कहो कि यात्रा की तैयारी करें।

"अच्छा, भगवन्! "कह भिक्षु-संघ को इस बात की सूचना दे दी।

कपिलवस्तु गमन

भगवान् भिक्षुओं की मण्डली के साथ राजगृह से निकलकर, प्रति दिन योजन भर चलते थे। राजगृह से साठ योजन दूर कपिलवस्तु दो मास में पहुँचने की इच्छा से चलते धीमी चाल से चलते हुए कपिलवस्तु पहुँचे। कालउदायी भिक्षु आगे-आगे जाकर शाक्य सिंह तथागत बुद्ध के आगमन की सूचना महाराज शुद्धोदन और सम्बधिन लोगों को दे दी।

शाक्यगण भी भगवान के पहुँचने पर अपनी जाति के इस श्रेष्ठतम पुरुष के दर्शन की इच्छा से एकत्रित हुए। अगवानी के लिए पहले छोटे-छोटे लड़कों (राजकुमारो) और लड़कियों (राजकुमारियों) को माला गन्धादि के साथ भेज कर पीछे-पीछे स्वय भी गये। इतना होने पर भी उन लोगों के लिए सिद्धार्थ "सिद्धार्थ" ही थे। वे किसी के पुत्र थे तो किसी के नाती और किसी के भाजा थे तो किसी के कनिष्ट भ्राता। शाक्य अभिमानी स्वभाव के थे ही। अत. बुद्ध को स्वजाति एव राष्ट्र का होना उनके प्रति उचित गौरव प्रदर्शित होने में बाधक हुई। उपस्थित लोग अवस्था के अनुकूल अपने को नहीं बना पाये। मानों बुद्ध कोई कौतुक वस्तु हो! वे किंकर्तव्य विमूढ़ हुए थे।

न्यग्रोध नामक शाक्य ने शाक्य सिंह तथागत बुद्ध को अपने आराम (वन) में टिकाया।

सम्बन्धियों से मिलन

अगले दिन तथागत बुद्ध ने अपने शिष्यों सहित कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये प्रवेश किया। वहाँ न किसी ने उन्हें भोजन के लिए ही निमन्त्रित किया और न किसी ने उनका पात्र ही ग्रहण किया।

बुद्ध ने विना विचार-किसी स्वजन अथवा इतर जन एवं धनी निर्धनी के वीथी के एक सिरे से सभी के घरों में गये।

"आर्य सिद्धार्थ कुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह सुन लोग अपने अपने घरों से निकल देखने लगे।

आर्य पुत्र इसी नगर में राजाओं के बड़े भारी ठाट से पालकी आदि में चढ कर घूमे और आज इसी नगर में वह शिर दाढी मुण्डा, काषाय वस्त्रधारी हो, हाथ में खपड़ा ले भिक्षाचार करें, क्या यह शोभा देता है? कह खिड़की खोलकर राहुल माता यशोधरा ने देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल वह बुद्ध शरीर नगर की सड़कों को प्रभावित कर रहा है। उसने अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान को देखा और उनका शिर से पाव तक का वर्णन इस प्रकार आठ गाथाओं में किया—

"चिकने, काले, कोमल घूंघर वाले केश हैं, सूर्य सदृश निर्मल तल वाला ललाट है, सुन्दर ऊँची, कोमल, लम्बी नासिका है, नरसिंह अपनी रश्मि-जाल को फैलाते चल रहे हैं।"

महाराज शुद्धोदन को ज्ञानदर्शन

फिर जाकर राजा से कहा—"आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।

राजा घबराया, हाथ से धोती सम्भालते, जल्दी-जल्दी निकलकर वेग से जा भगवान के सामने खड़ा होकर बोला, "कुमार! हमें क्यों लजवाते हो? किसलिए भिक्षा कर रहे हो? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुओं के लिये हमारे यहाँ से भोजन नहीं मिल सकता है।"

"महाराज! हमारे वंश का यही आचार है।"

"कुमार! निश्चय से हम लोगों का वंश महासम्मत (= मनु) का क्षत्रिय वंश है। इस वंश में एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ।"

"महाराज! वह राजवंश तो आपका वंश है। हमारा वंश तो

शुद्ध वंश है और दूसरे अनेक बुद्ध भिक्षाचारी रहे हैं, भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं।" महाराज ने जाति, कुल एवं धनाभिमान का मर्दन करते हुए उसी समय सड़क पर खड़े ही खड़े यह गाथा कही :—

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य, धम्मं सुचरितं चरे।
धम्म चारि सुखं सेति, अस्मिं लोके परं हिच॥

"उद्योगी हो, आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे, धर्मचारी पुरुष इस लोक और परलोक में सुख से सोता है। सुचरित कर्म का आचरण करे, दुश्चरित कर्म का आचरण न करे। धर्मचारी पुरुष इस लोक और परलोक में सुख पूर्वक सोता है।"

इस गाथा के द्वारा महाराज को स्रोतापत्ति-फल (स्थिरता) में स्थित किया। महाराज ने भगवान् का भिक्षापात्र ले मण्डली सहित भगवान् को महल में ले जाकर उत्तम खाद्य-भोज्य पदार्थों से संतृप्त किया।

अहा! जो एक दिन राजकुमार के रूप में उस महल में निवास करते थे वही आज एक भिक्षु के रूप में उसमें विराजमान हैं। कैसा मर्मस्पर्शी दृश्य है! उस समय भगवान् के शरीर से अलौकिक स्वर्गीय शोभा का विकास हो रहा था। उनका केश-रहित विशाल मस्तक, दीप्तमान मुखमंडल, अर्द्ध अनिमीलित लोचन युगल, काषाय-वस्त्र-वेष्ठित गौर शरीर, भिक्षापात्र-युक्त हस्त और उपानह हीन चरणद्वय, तथा धर्मरूपी अलङ्कार से विभूषित शरीर अलौकिक शोभा वितरण, कर रहा था। उनकी अनुपम ज्योति और दिव्य लावण्य से दर्शक-मंडली मुग्ध हो रही थी। जिस समय भगवान ने अपने श्रीमुख से धर्मामृत का वितरण करना आरंभ किया, राज-परिवार में एक अलौकिक शांति विराजमान हो गई और सब नर नारीगण परम भक्ति विह्वल और मुग्ध हो गये।

भोजन के पश्चात भगवान् अपनी शिष्य-मंडली के साथ एक सुन्दर स्थल पर विराजमान हुए और उनके दर्शन, वन्दन और उपदेश

श्रवण करने के लिये राहुल माता को छोड़कर राज परिवार के प्राय सभी स्त्री और पुरुष भगवान के सम्मुख उपस्थित हुए।

यशोधरा

'राहुल माता को छोड़कर शेष सभी रनिवास ने आ-आकर भगवान् की वन्दना की। साथी परिजनों द्वारा—जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो कहकर प्रेरित किये जाने पर भी यदि मुझ में गुण हैं, तो आर्यपुत्र मेरे पास आयेंगे। आने पर ही वन्दना करूँगी' कहकर वह तेज विशिष्ठा नारी नहीं ही गई।

भोजनोपरान्त भगवान् ने भी उसका ख्यालकर महाराज को पात्र दे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को साथ ले राजकुमारी के शयनागार में गये और साथियों को आदेश दिया कि "राजकन्या को यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना।" कह बिछे आसन पर बैठ गये। राहुल-माता ने जल्दी से आ पैर पकड़ कर शिर को पैरों पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। महाराज ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह सत्कार आदि गुण को कहा—भन्ते मेरी बेटी आपके काषायवस्त्र पहनने को सुनकर काषाय धारिणी हो गई। आपके एक बार भोजन करने को सुनकर एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचे पलग छोड़ने की बात सुनकर तख्ते पर सोने लगी। आपके माला-गन्ध आदि से विरत होने की बात सुनकर माला-गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहर वालों के द्वारा बुलाये जाते रहने पर भी नहीं गई। भगवान् मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

इस प्रकार राहुलमाता यशोधरा की पवित्र चर्या सुनकर भगवान् सतुष्ट हुए और उसके पूर्वजन्म-सबधी कई कथायें सुनाकर उसे शाति प्रदान की। यशोधरा को उपदेश देकर भगवान् अपने भिक्षु सघ-समेत न्यग्रोधाराम को लौट आये।

फिर एक दिन भगवान् राजमहल में प्रात काल भोजन के

लिए गए। भोजन कर चुकने पर, एक ओर बैठे राजा ने कहा—"भन्ते! आपके दुष्कर तपस्या करने के समय, एक मनुष्य ने मेरे पास आकर कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया। उसके वचन पर विश्वास न करके उसके वचन का खण्डन करते हुए मैंने कहा—"मेरा पुत्र बुद्ध-पद प्राप्त किये बिना मर नहीं सकता।"

ऐसा कहने पर भगवान् ने कहा—जब आपने उस समय हड्डिया दिखाकर, 'तुम्हारा पुत्र मर गया' कहने पर विश्वास नहीं किया तो अब क्या विश्वास करेंगे?" इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए भगवान् ने महाधम्मपाल जातक॥ को कहा। कथा के समाप्त होने पर राजा अनागामि फल में स्थित हुआ।

ज्येष्ठ कुमार सिद्धार्थ (भगवान बुद्ध) की उपस्थिति मे नन्दकुमार का विवाह करा राज्याभिषेक अर्थात् अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए महाराज शुद्धोदन ने विशेष आयोजन किया था। अत. राजभवन में उस दिन विशेष समारोह था।

भ्राता नन्द

भोजन के अनन्तर भगवान् अपना भिक्षापात्र नन्दकुमार के हाथ में दे अपने आश्रम को गये। नन्दकुमार भी पात्र लिए उनके पीछे-पीछे आश्रम तक गया। भिक्षुओं के सम्पर्क में ला वहाँ उसे भी सघ में सम्मिलित कर लिया।

पुत्र राहुल

सातवें दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलंकृत कर, भगवान के पास यह कह कर भेजा, "तात देख! श्रमणों के उस महासंघ के मध्य में जो वह सुनहले उत्तम रूप वाले साधु (=श्रमण) हैं वही तेरे पिता हैं। जा, उनसे विरासत माँग। पास जाकर उनसे कहो

॥ जातक (पृ० ४४७)।

श्रवण करने के लिये राहुल माता को छोड़कर राज परिवार के प्राय सभी स्त्री और पुरुष भगवान के सम्मुख उपस्थित हुए।

यशोधरा

'राहुल माता को छोड़कर शेष सभी रनिवास ने आ-आकर भगवान् की वन्दना की। साथी परिजनों द्वारा—जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो कहकर प्रेरित किये जाने पर भी यदि मुझ में गुण हैं, तो आर्यपुत्र मेरे पास आयेंगे। आने पर ही वन्दना करूँगी' कहकर वह तेज विशिष्ठा नारी नहीं ही गई।

भोजनोपरान्त भगवान् ने भी उसका ख्यालकर महाराज को पात्र दे सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को साथ ले राजकुमारी के शयनागार में गये और साथियों को आदेश दिया कि "राजकन्या को यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना।" कह बिछे आसन पर बैठ गये। राहुल-माता ने जल्दी से आ पैर पकड़ कर शिर को पैरों पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। महाराज ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह सत्कार आदि गुण को कहा—भन्ते मेरी बेटी आपके काषायवस्त्र पहनने को सुनकर काषाय धारिणी हो गई। आपके एक बार भोजन करने को सुनकर एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचे पलग छोड़ने की बात सुनकर तख्ते पर सोने लगी। आपके माला-गन्ध आदि से विरत होने की बात सुनकर माला-गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहर वालों के द्वारा बुलाये जाते रहने पर भी नहीं गई। भगवान् मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

इस प्रकार राहुलमाता यशोधरा की पवित्र चर्या सुनकर भगवान् सतुष्ट हुए और उसके पूर्वजन्म-सबधी कई कथायें सुनाकर उसे शाति प्रदान की। यशोधरा को उपदेश देकर भगवान् अपने भिक्षु संघ-समेत न्यग्रोधाराम को लौट आये।

फिर एक दिन भगवान् राजमहल में प्रात.काल भोजन के

इसी समय अनिरुद्ध, आनंद, भद्रिय, किमिल, भृगु और देवदत्त नामक से छः शाक्य-वंशीय राजकुमार कपिलवस्तु से भगवान् के पास आये। इन राजकुमारों के साथ उपाली नामक एक नापित भी था। जिस समय ये राजकुमार भगवान् के निकट आ रहे थे, उन्होंने विचारा, हम लोग तो प्रव्रजित होंगे, तब इन सुन्दर वस्त्रालंकारों को पहनकर भगवान् के निकट जाने से क्या लाभ ? यह सोचकर उन राजकुमारों ने अपने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण उतार डाले और उनकी गठरी बाँध उपालि को देकर बोले—"इसे लेकर तुम घर लौट जाओ। यह तुम्हारे जीवन भर के लिये काफी है। हम लोग प्रव्रजित होंगे।" ऐसा कह गठरी दे राजकुमार आगे बढे। उपालि उस समय कुछ नहीं बोला। बाद में उसने सोचा—"जिन वस्त्र-आभूषणों को मलमूत्र की तरह त्यागकर ये राजकुमार भगवान् के निकट महामूल्यवान निर्वाण-धर्म को ग्रहण करने चले गये, उन्हें ग्रहण करके महानीच के समान मे जीवन-यापन करूँ। छीः ! छी ! मुझसे यह न होगा। सेवक जाति में जन्म लेन के कारण मै समाज में वैसे ही नीच जीवन व्यतीत करता हूँ अब प्रव्रज्या-रूपी महासम्पत्ति से विमुख होकर यदि मैं इन मलमूत्र के समान परित्यक्त वस्त्राभूषणों का संग्रह करूँ तो मैं अवश्य ही लोक और परलोक दोनों में नीच होने के कारण महानीच प्राणी हो जाऊँगा।" ऐसा विचार कर उपाली ने उस बहुमूल्य गठरी को एक वृक्ष पर टाँगकर लिख दिया, जो इसे लेना चाहे, ले ले, इस पर किसी का स्वामित्व नहीं है और स्वयं शीघ्रता से चलकर भगवान के निकट पहुँचे एवं शाक्य-राजकुमारों के साथ प्रव्रजित होने की भगवान से इच्छा प्रकट की। समदर्शी भगवान ने उपाली नापित को सबसे प्रथम दीक्षा प्रदान की और राजकुमारों को उसके बाद। बुद्ध-धर्म की मर्यादा है कि धर्म ग्रहण करने में एक मुहूर्त भी जो प्रथम है, वह अपने परवर्ती से ज्येष्ठ होता है, अतः परवर्ती उसे भन्ते कहकर प्रणाम करेगा और पूर्ववर्ती उसे आयुष्मान् कहकर आशीर्वाद

"तात ! मैं राजकुमार हूँ। अभिषेक करके चक्रवर्ती राजा बनूँगा। मुझे धन चाहिए। धन दें। पुत्र पिता की सम्पत्ति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान् के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्नचित्त हो, "श्रमण ! तेरी छाया सुखमय है" कह और भी अपने अनुकूल कुछ कुछ कहता खड़ा रहा।

भगवान् भोजन के बाद दान का महत्व कह आसन से उठकर चले गये। कुमार भी, 'श्रमण ! मुझे दायज दें। श्रमण ! मुझे दायज दें।' कहता भगवान् के पीछे-पीछे हो लिया। भगवान् ने कुमार को नहीं लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने से न रोक सके। इसलिए वह भगवान् के साथ आराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा—"यह पिता के पास जिस धन को मागता है, वह (धन) सासारिक है, नाशवान है। क्यों न मैं इसे बोधिमंडप में मिला अपना सात प्रकार का आर्य-धन दूँ। इसे अलौकिक विरासत का स्वामी बनाऊ ऐसा सोच आयुष्मान सारिपुत्र को कहा—"सारिपुत्र ! तो लो राहुल को साधु बना श्रद्धा, शील (=सदाचार), लज्जा, निन्दा से भय खाने वाला समाधि में लगा बहुश्रुत, त्यागी तथा प्रज्ञावान बनाओ।" राहुल कुमार के साधु होने पर राजा को अत्यत दु ख हुआ। उस दुःख को न सह सकने के कारण राजा शुद्धोदन ने भगवान् से निवेदन कर, वर माँगा—"अच्छा हो भन्ते ! आर्य (भिक्षु) लोग माता-पिता की आज्ञा के बिना किसी को प्रव्रजित न करें।" भगवान् ने राजा को वह वर दिया और नियम बना दिया कि भविष्य में सरक्षक माता-पिता अथवा आश्रित जन की आज्ञा के बिना कोई किसी को प्रव्रजित न करें।

अनुरुद्ध, आनन्द और उपाली आदि का सन्यास

राहुल कुमार को प्रव्रजित कर भगवान् कपिलवस्तु से चल मल्ल-देश में चारिका करते मल्लों के **अनुपिया** ग्राम के आम्रवन में पहुँचे थे। उस समय शाक्य कुलों के तथा अन्य अनेक सम्भ्रान्त कुलों के युवक भगवान् के पास पहुँच कर भिक्षुभाव को ग्रहण करते थे।

इसी समय अनिरुद्ध, आनंद, भद्रिय, किमिल, भृगु और देवदत्त नामक से छ शाक्य-वंशीय राजकुमार कपिलवस्तु से भगवान् के पास आये। इन राजकुमारों के साथ उपाली नामक एक नापित भी था। जिस समय ये राजकुमार भगवान् के निकट आ रहे थे, उन्होंने विचारा, हम लोग तो प्रव्रजित होंगे, तब इन सुन्दर वस्त्रालंकारों को पहनकर भगवान् के निकट जाने से क्या लाभ ? यह सोचकर उन राजकुमारों ने अपने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण उतार डाले और उनकी गठरी बाँध उपालि को देकर बोले—"इसे लेकर तुम घर लौट जाओ। यह तुम्हारे जीवन भर के लिये काफी है। हम लोग प्रव्रजित होंगे।" ऐसा कह गठरी दे राजकुमार आगे बढे। उपालि उस समय कुछ नहीं बोला। बाद में उसने सोचा—"जिन वस्त्र-आभूषणों को मलमूत्र की तरह त्यागकर ये राजकुमार भगवान् के निकट महामूल्यवान निर्वाण-धर्म को ग्रहण करने चले गये, उन्हें ग्रहण करके महानीच के समान मे जीवन-यापन करूँ। छी: ! छी ! मुझसे यह न होगा। सेवक जाति में जन्म लेने के कारण मैं समाज में वैसे ही नीच जीवन व्यतीत करता हूँ अब प्रव्रज्या-रूपी महासम्पत्ति से विमुख होकर यदि मैं इन मलमूत्र के समान परित्यक्त वस्त्राभूषणों का संग्रह करूँ तो मैं अवश्य ही लोक और परलोक दोनों में नीच होने के कारण महानीच प्राणी हो जाऊँगा।" ऐसा विचार कर उपाली ने उस बहुमूल्य गठरी को एक वृक्ष पर टाँगकर लिख दिया, जो इसे लेना चाहे, ले ले, इस पर किसी का स्वामित्व नहीं है और स्वयं शीघ्रता से चलकर भगवान के निकट पहुँचे एवं शाक्य-राजकुमारों के साथ प्रव्रजित होने की भगवान से इच्छा प्रकट की। समदर्शी भगवान ने उपाली नापित को सबसे प्रथम दीक्षा प्रदान की और राजकुमारों को उसके बाद। बुद्ध-धर्म की मर्यादा है कि धर्म ग्रहण करने में एक मुहूर्त भी जो प्रथम है, वह अपने परवर्ती से ज्येष्ठ होता है, अतः परवर्ती उसे **भन्ते** कहकर प्रणाम करेगा और पूर्ववर्ती उसे **आयुष्मान्** कहकर आशीर्वाद

देगा। अतएव भगवान ने उपाली को इसलिये प्रथम दीक्षा दी' ताकि शाक्य-वंशीय राजकुमार प्रव्रजित होने पर भी सेवक समझकर उसका अपमान न करें। वरन् उसे अपने से ज्येष्ठ समझकर उसका सम्मान करें। ये सातों शिष्य आगे चलकर भगवान के प्रधान शिष्य हुए। उपाली तीन भागों में विभक्त बौद्ध शास्त्र में **विनयपिटक** के आचार्य हुए। विनयपिटक उस भाग को कहते हैं, जिसमें भिक्षुओं के धर्म विनय का विधान है।

महाकाश्यप की दीक्षा

मगध के महातीर्थ नामक गांव के **पिप्पली** नामक एक महाधनवान ब्राह्मण युवक ने अपने माता-पिता के मरने पर एक दिन घर से निकल प्रव्रजित होने को ठाना। उसे अपने माणवक (विद्यार्थी) जीवन से ही अपने घर की सामन्तशाही जीवन पद्धति से वैराग्य हुआ था। परंतु माता पिता का ख्याल कर उनकी जीवित अवस्था में घर पर बना रहा। पिप्पली ब्राह्मण युवक के पास बड़ी भारी सम्पत्ति थी। शरीर को उबटन कर फेंक देने का चूर्ण ही मगध की नाली* से बारह नाली भर होता था। तालों के भीतर साठ बड़े चहबच्चे (तड़ाग), बारह योजन तक फैले खेत, **अनुराधपुर†** जैसे चौदह हाथियों के झुण्ड, चौदह घोड़ों के झुण्ड और चौदह रथों के झुण्ड थे। उसकी स्त्री के पास भी पचपन हजार गाड़ियाँ भर धन (स्त्री धन) था।

वे स्त्री-पुरुष, दोनों ही, समवयस्क तथा परम सुन्दर तथा एक विचार के थे। परन्तु उन्हें अहर्निश यह बात सताया करती थी कि उतने धन के संग्रह कर रखने और हजारों दास-दासियों को इस प्रकार बंद रखने से क्या लाभ? इतना पाप किस लिये किया जाता है? क्योंकि उन्हें "सिर्फ चार हाथ वस्त्र और नाली भर भात चाहिए।" इस प्रकार

---

* एक माप जो प्रायः एक सेर के लगभग की थी।

† प्राय अठारह योजन

के पाप से उन्हे "अनेको जन्म में भी छुटकारा नहीं मिल सकेगा।"

एक दिन वे—"हमारे तीनों भव (लोक) जलती हुई फूस की झोपड़ी समान मालूम पड़ते हैं, हम प्रव्रजित होंगे" विचार कर हाथ में मिट्टीका भिक्षा पात्र ले, "संसार में जो अर्हत हैं, उन्हीं के उद्देश्य से हमारी यह प्रव्रज्या है" कह प्रव्रजित हो, झोली में पात्र रखकर कधे से लटका, महल से उतरे। घर में दासों या कर्मकरों में से किसी ने भी न जाना।

वह अपने ब्राह्मण ग्राम से निकल दासों के ग्राम के द्वारा से आने लगे। काषाय वसन, मुण्डित सिर होने पर भी आकार-प्रकार से दास ग्राम वासियों ने उन्हें पहिचाना। रोते हुए पैरों में गिरकर वे ग्रामवासी बोले'—

'हमको क्यों अनाथ बना रहे हो आर्य?"

"भणे। हम तीनों भवों को जलती फूसकी झोपड़ी-सी समझ प्रव्रजित हुए हैं, यदि तुम में से एक-एक को दासता से पृथक-पृथक मुक्त करें तो सौ वर्ष में भी न हो सकेगा। तुम ही अपने आप शिरों को धोकर दासता से मुक्त हो जाओ।"

इस प्रकार उन मानव प्राणियों को मुक्त कर—अपनी जमीदारी की सीमा से बाहर निकल जाने पर मार्ग में चलते हुए माणवक ने सोचा—एक अति सुन्दर स्त्रीरत्न, इस **भद्रा कपिलायिनी** को मेरे साथ देखकर लोग कहेंगे "सन्यासी होकर भी स्त्री से अलग नहीं हो सके।" अतः पिप्पली माणवक एक ऐसे स्थान पर खड़ा हो गया, जहाँ से वह रास्ता, दो तरफ को फटता था। भद्रा ने पूछा—आर्य। "क्यों ठहर गए?" माणवक ने कहा—भद्रे? तुझ स्त्री को मेरे साथ देखकर पाप-पूर्ण कल्पना करके लोग नरकगामी होंगे, इसलिये यह उचित है कि इन दो रास्तों में से एक पर तुम जाओ और एक पर मैं।"

"हाँ आर्य! सन्यासी के साथ स्त्री न होनी चाहिए। यह लोक चर्या नहीं है। मुझमें भी लोग दोष देखकर मन में पाप भावना करके

नरकगामी होंगे, इसलिये हम दोनों को पृथक् होना ही उचित है।" ऐसा कह प्रव्रजित पतिदेव को तीन बार प्रणाम करके, दशों नखों के योग से शुभ्रगौर अंजली जोड़कर भद्रा बोली—"इतने दिनों से चला आया सम्बन्ध आज छूटता है। आर्य!" ऐसा कह दोनों एक दूसरे से पृथक हो गए!

इस प्रकार यह काश्यप-गोत्रीय विरक्त ब्राह्मण युवक जिस समय भगवान् की शरण में आ रहा था, उस समय भगवान् राजगृह के **वेलुवन विहार** में वर्षावास कर रहे थे। गंधकुटी में बैठे भगवान् को मालूम हुआ कि पिप्पली माणवक और भद्रा कापिलायिनी अपनी अपार सम्पत्ति को त्यागकर प्रव्रजित हुए हैं और वह माणवक मेरे पास उपसम्पदा ग्रहण करने आ रहा है। मुझे उसका स्वागत करना चाहिए। ऐसा निश्चय कर भगवान् ने अपने सहवासी ८० महास्थविरों को बिना कुछ कहे, पात्र चीवर ले, गंधकुटी से निकल, आगे बढकर राजगृह और नालदा के बीच एक वटवृक्ष के नीचे अपना आसन जमा दिया। माणवक ने वहीं आकर भगवान् से उपसम्पदा ग्रहण की और भगवान् ने उसे 'महाकाश्यप' कहकर संबोधित किया। उपसम्पदा ग्रहण कर आठवें दिन महाकाश्यप ने अर्हत-पद को प्राप्त किया। कुछ समय पीछे भद्रा कापिलायिनी भी भगवत्चरण में आकर भिक्षुणी हुई।

महाकात्यायन

महाकात्यायन उज्जैन-नगर के राजपुरोहित के पुत्र थे। इन्होंने तीनों वेदों को विधिवत् अध्ययन कर पिता के मरने पर पुरोहित-पद पाया। भगवान् के यश को सुनकर उज्जैन नृपति महाराज **चंड-प्रद्योत** की कामना हुई कि भगवान् को अपने नगर में बुलावें। उन्होंने महाकात्यायन से अपनी इच्छा प्रकट की। महाकात्यायन अपने सात साथियों को लेकर भगवान् के निकट आए। भगवान् ने धर्मोपदेश देकर उन्हें प्रव्रजित किया।

इस प्रकार प्रव्रजित होकर महाकात्यायन ने भगवान् से उज्जैन चलने की प्रार्थना की, किन्तु भगवान् ने उज्जैन जाना स्वीकार न करके उन्हें ही उज्जैन में धर्म प्रचार करने की आज्ञा दी। भगवान की आज्ञा से स्थविर महाकात्यायन अपने साथियों-सहित उज्जैन चले। मार्ग में तेलप्पनाली नगर में भिक्षा के लिए निकले। उस नगरमें दो सेठ-कन्याएँ थी—एक धनी घर की केश हीना थी, दूसरी गरीब घर की परन्तु अति सुन्दरी और प्रलवकेशी। धनी सेठ की कन्या ने कितनी ही बार सहस्रों मुद्रा देकर इसके केश माँगे, किंतु इसने नहीं दिए। परन्तु स्थविरों को भिक्षार्थ घूम खालीपात्र लौटते देख इस निर्धन सेठ कन्या ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया और अपने केश कतर अपनी दाई को दे बोली, अमुक सेठ कन्या से इसका मूल्य ले आ। दाई जब केश लेकर धनिक कन्या के पास गई तो उसने उनका मूल्य, निरस्कार-पूर्वक, केवल आठ ही मुद्रा दिया। दरिद्र सेठ-कन्या ने उन आठ ही मुद्राओं से स्थविरों को भोजन कराया। स्थविरों ने इस रहस्य को जान लिया और भोजन के उपरांत सेठ-कन्या को बुलाया। कटे केश सेठ कन्या ने आकर स्थविरों की वंदना की। फिर वहा से चल स्थविर ने उज्जैन के **कांचन वन** में पड़ाव डाला। महाराज उज्जैन ने उन्हें प्रणाम कर सब समाचार एवं दिवा भोजन की बात पूछी। महाका त्यायन ने राजा को सब समाचार सुनाया। राजा ने सेठ कन्या की श्रद्धा को सुनकर उसे सम्मानपूर्वक बुला अपनी पटरानी बनाया। सेठ कन्या को अपने पुण्य का फल इसी जन्म में मिल गया। सेठ-कन्या ने एक पुत्र प्रसव किया जिसका नाम **गोपालकुमार** रक्खा गया और वह **गोपाल माता** के नाम से प्रसिद्ध हुई। गोपालमाता ने पुत्रोत्पत्ति की खुशी में राजा से कहकर स्थविरों के लिये उस कांचनवन में विहार बनवा दिया। इस प्रकार उज्जैन में कुछ काल धर्म प्रचार कर स्थविर महाकात्यायन भगवान् के समीप चले गए।

वछ्छगोत्र

एक समए जब भगवान् श्रावस्ती में थे—वछ्छगोत्र नामक एक परिव्राजक भगवान् बुद्ध के पास आया और प्रश्न किया कि हे गौतम ! **अहं अस्मि** ? तथागत ने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुप रहे। वछ्छगोत्र ने फिर प्रश्न किया **नाहं अस्मि** ? तथागत ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया, चुप रहे। वछ्छगोत्र नाराज होकर चला गया। उसके चले जाने के बाद भगवान के प्रिय शिष्य आनन्द ने पूछा कि हे भगवन् ! आपने वछ्छगोत्र के प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दिया ? भगवान् बोले—आनन्द ! यदि हम 'अह अस्मि, का उत्तर हाँ कहते तो **साश्वतवाद** का समर्थन करना होता और यदि 'नाहं अस्मि' इस प्रश्न के उत्तर में हाँ कहते तो **उच्छेदवाद** का समर्थन करना होता।

वक्कलि ! किमिना पूतीकायेन

यो धम्म पस्सति सो म पस्सति।

सेय्यथापि भिक्खवे या कांचि महानदियो सेय्यथीदं-गगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही ता महा समुद्ध पत्ता जहन्ति पुरिमानि नाम गोत्तानि महासमुद्धोत्वेव संखं गच्छन्ति, एवमेव खो भिक्खवे चत्तारो मे वण्णा खत्तिया ब्राह्मणा, वेस्सा, सुद्दा; ते तथागतप्पवेदिते धम्मविनये अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता जहन्ति पुरिभानि नमाम गोत्तानि समना सक्यपुत्तियात्वेव संखं गच्छन्ति।

अनुवाद·— भिक्षुओ ! जितनी महानदियाँ हैं, जैसे गगा, यमुना अचिरवती (राप्ती) शरभू (सरयू, घाघरा) और मही (गंडक) वे सभी महासमुद्र को प्राप्त होकर अपने पहले नाम गोत्र को छोड़ देती हैं और महासमुद्र के नाम से ही प्रसिद्ध होती हैं। ऐसे ही भिक्षुओ ! क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्र—यह चारो वर्ण तथागत के बतलाये धर्म-

विनय में घर त्याग कर प्रव्रजित (संन्यासी) हो पहले के नाम-गोत्र को छोड़ शाक्यपुत्रीय श्रमण के ही नाम से प्रसिद्ध होते हैं।

गृहस्थों के विषय में भी तथागत कहते हैं.—

आश्वलायन

एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन नामक विहार में विराजमान थे, तो **आश्वलायन** नामक ब्राह्मण बहुत से ब्राह्मणों के साथ उपस्थित हुआ और उचित स्थान पर बैठकर नम्रता पूर्वक भगवान बुद्ध से कहने लगा —

"हे गौतम! ब्राह्मण लोग ऐसे कहा करते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं और दूसरे सब हीन वर्ण हैं, ब्राह्मण लोग ही शुक्ल वर्ण हैं और दूसरे सब लोग काले वर्ण हैं, ब्राह्मण लोग ही शुद्ध हैं और दूसरे लोग अशुद्ध हैं, ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, वह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुये हैं, वह ब्राह्मण है, उन्हें स्वयं ब्रह्मा जी ने निर्मित किया है। ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मा के वारिस हैं। हे गौतम! इस विषय में आपका क्या मत है।"

भगवान् बोले—"आश्वलायन तुमने अवश्य देखा होगा कि ब्राह्मणों के घर ब्राह्मणी, उनकी स्त्रियाँ, ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म से होती है, गर्भ धारण करती हैं, प्रसव करती अर्थात् बच्चा जनती है और अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। तब फिर इस प्रकार स्त्री-योनि से उत्पन्न होते हुये भी ब्राह्मण लोग ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने इत्यादि अपने बड़प्पन और अहंकार की बात क्यों करते है?

"क्या आश्वलायन! तुमने सुना है कि **यवन** (युनान) **कबोज** (ईरान) में और दूसरे भी सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं— आर्य और दास! आर्य से दास हो सकते हैं और दास से आर्य हो सकते है। (आर्य्यो हुत्वादासो होति दासो हुत्वा आर्य्यो होती)

"हाँ भगवान्! मैंने सुना है।"

---

१ विनयपिटक, चुल्लवग्ग ४

"आश्वलायन ! तब ब्राह्मण लोग किस बल पर कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है और नहीं ।"

"शरीरधारी जितने भी प्राणी हैं उनमें जाति को पृथक करने वाले लक्षण दीखते हैं, परन्तु मनुष्य में जाति को पृथक करने वाले उस प्रकार के कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते, मनुष्यों में जो कुछ पृथकता है वह तुच्छ और काल्पनिक है ।

इस जगत् में मनुष्यों के नाम और गोत्रादि कल्पित होते हैं, वे संज्ञामात्र है, भिन्न भिन्न स्थानों में उनकी कल्पना हुई है । वे साधारण लोगों के मत से उत्पन्न हुये हैं । ज्ञान-हीन लोगों में इस प्रकार की मिथ्या दृष्टि बहुत काल से प्रचलित होती आई है, वे लोग कहा करते हैं कि ब्राह्मण जाति में जन्म लेने से ही ब्राह्मण होता है ।

परन्तु जन्म के द्वारा न कोई ब्राह्मण होता है और न अब्राह्मण । कर्म के द्वारा ही ब्राह्मण होता है और कर्म के द्वारा ही अब्राह्मण ।

"न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है । मैं ब्राह्मणी माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता । जिसके पास कुछ नहीं है और जो कुछ नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।"

"न तो कोई जन्म से वृषल (शूद्र वा चाण्डाल) होता है और न ब्राह्मण, कर्म से ही वृषल होता है तथा कर्म से ही ब्राह्मण ।

(अंगुत्तर निकाय में) भगवान् ने एक और अवसर पर कहा है.—

सुत्त पिटक, मज्झिम निकाय, अस्सला यन सुत्त ।

सुत्तनिपात, वासेट्ठ सुत्त

धम्मपद-ब्राह्मण वर्ग ११, १४

वसल सुत्त

कर्मवाद

"यदि ऐसा मानें कि जो कुछ सुख-दुःख या अपेक्षा कि वेदना होती है सभी पूर्व कर्म के फल स्वरूप ही होती है, तो जो प्राणानिपाती हैं, चोर है, व्यभिचारी है, झूठे हैं, चुगलखोर हैं, कठोर भाषी हैं, गप्पी है, लोभी हैं, द्वेषी हैं, मिथ्या दृष्टि वाले हैं वे वैसा पूर्व कर्म के फल-स्वरूप ही होगे। इसलिए भिक्षुओं! जो ऐसा मानते हैं कि सब कुछ पूर्व कर्म के फलस्वरूप ही होता है तो उनके मत से न तो अपनी इच्छा होनी चाहिए। न अपना प्रयत्न होना चाहिए। उसके लिए न तो किसी काम का करना होगा और न किसी काम से विरत रहना।"

तृण वृक्षादिकों में तुम लोग जानते हो कि यद्यपि वो लोग कहकर अपनी जाति व्यक्त नहीं करते तथापि उनके भिन्न-भिन्न लक्षणादिकों से भिन्न-भिन्न जातियाँ प्रतीत होती है।

इसके बाद कीट पतंग और पिपिलिका आदि के भी लक्षणादिकों से भिन्न-भिन्न जातिया प्रतीत होती हैं। चतुष्पादि पशुओं में भी तुम लोग जानते हो कि चाहे वे बड़े हों अथवा छोटे, उनके भी लक्षणादि से उनकी भिन्न-भिन्न जातिया होती हैं। सरीसृप और दीर्घ पृष्ट सर्पादिको में तुम लोग जानते हो कि लक्षणादि से ही पृथक्-पृथक् जाति मालूम होती है। इसी प्रकार जल में विहार करने वाले मत्स्यादिकों में भी तुम लोग जानते हो कि लक्षणादिकों के द्वारा ही उनकी भिन्न-भिन्न जातियाँ प्रकट होती हैं। फिर वृक्षादि और पत्तों में विहार करने वाले विहंग और पक्षीगणों की भी, तुम लोग जानते हो कि लक्षणादिकों द्वारा ही उनकी जातियाँ भिन्न-भिन्न हैं। उपरोक्त वर्णित इन लोगों की जिस प्रकार लक्षण या चिन्ह से भिन्न-भिन्न जातियाँ दिखाई देती हैं। मनुष्यों में भिन्न-भिन्न जाति प्रकट करने वाले उस प्रकार के लक्षण या चिन्ह नहीं

है। शरीर धारियों में जितने भी प्राणी हैं उनमें जाति को पृथक करने वाले लक्षण दीखते हैं परन्तु मनुष्यों में जाति को पृथक करने वाले उस प्रकार के कोई चिन्ह या लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। मनुष्यों में जो कुछ पृथकता दिखाई देती है वह तुच्छ और काल्पनिक है। (मनुष्यों में जो तुच्छ और काल्पनिक भेद है वह इस प्रकार है) गोरक्षा के द्वारा जिन लोगों की जीविका है, हे वाशिष्ठ! यह तुम्हें मालूम हो कि वह कृषक है ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में विविध प्रकार के शिल्पों द्वारा जिनकी आजीविका है, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह शिल्पी है ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में जो वाणिज्य और व्यवसाय द्वारा जीविका उपार्जन करते हैं, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह वणिक है ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में दास्य वृत्ति के द्वारा जिसकी जीविका है, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह भृत्य है, ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में जिनकी आजीविका चोरी है, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह चोर है ब्राह्मण नहीं। धनुषबाण इत्यादि शस्त्रों के द्वारा जिसकी जीविका है, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह युद्ध जीवी है ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में पुरोहिती के द्वारा जिसकी आजीविका चलती है, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह याजक (पुजारी) है, ब्राह्मण नहीं। मनुष्यों में ग्राम राष्ट्रादिकों पर अधिकार करके जो भोग भोगते हैं, हे वाशिष्ठ! यह मालूम हो कि वह राजा है, ब्राह्मण नहीं। किसी जाति में उत्पन्न होने के कारण अथवा किसी माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हम किसी को ब्राह्मण स्वीकार नहीं करते; वह भोवादी हो सकता है, वह धनी भी हो सकता है, किन्तु जो अकिंचन और जो अनाशक्त हैं हम उन्हीं को ब्राह्मण कहते हैं। इस जगत में मनुष्यों के नाम और गोत्र कल्पित है, वे संज्ञामात्र हैं, भिन्न-भिन्न स्थानों में उनकी कल्पना हुई है। वे साधारण लोगों की सम्मति पर उत्पन्न हुए हैं। ज्ञान हीन लोगों में इस प्रकार की मिथ्या

१. मूर्खों

दृष्टि बहुत काल से प्रचलित होती आई है, अन वे लोग कहा करते हैं कि ब्राह्मण जाति में जन्म लेने से ही ब्राह्मण होता है। (परन्तु सच बात तो यह है कि) जन्म के द्वारा न कोई ब्राह्मण होता है न कोई अब्राह्मण कर्म के द्वारा ही ब्राह्मण होता और कर्म के द्वारा ही अब्राह्मण। मनुष्य कर्म के द्वारा कृषक होता है कर्म के द्वारा शिल्पी, कर्म के द्वारा वणिक होता है कर्म के द्वारा भृत्य चोर भी कर्म के द्वारा होता है और कर्म के द्वारा युद्ध जीवी, कर्म के द्वारा याजक (पुजारी) होता है तथा कर्म के द्वारा राजा। इसी कारण से प्रतीत्य समुत्पाद नीति (कार्य कारण नीति) और कर्मफल के ज्ञाता पण्डितगण इस कर्म को यथार्थ रूप से देखते हैं।

कारण, इस जगत में जो नाम और गोत्र प्रकल्पित हुए वे संज्ञा मात्र हैं, भिन्न-भिन्न स्थानों में जो कल्पित हुए हैं वे साधारण लोगों के सम्मति से उत्पन्न हुए हैं।

संघ नियम की घोषणा

इस प्रकार देश के सुविख्यात और प्रतिष्ठित विद्वानों और आचार्यों को भगवान् के निकट प्रव्रज्या ग्रहण करके उनके शिष्य होने के कारण अगणित लोग भगवान् के धर्म में सम्मिलित होने लगे। संसार में सभी प्रकार के पुरुष हैं। इन अभिनव भिक्षुओं में भी सभी आश्रवहीन न थे। इस कारण भिक्षु-समूह में उद्दंडता और उच्छृङ्खलता की शिकायत होने लगी। कुछ भिक्षुगण आपस ही में कलह करने लगे। जब यह सब शिकायत भगवान् के पास पहुँची तो भगवान् ने भिक्षु-संघ को सुव्यवस्थित और सुमर्यादित करने के लिए संघ के नियम बना दिए। इन नियमों में भगवान् ने उपाध्याय के बिना भिक्षुओं के रहने का निषेध किया। उपाध्याय और आचार्य के साथ भिक्षुओं को किस प्रकार विनयशील होकर रहना चाहिए, उपाध्याय को किस प्रकार भिक्षुओं के साथ प्रेमपूर्ण वर्ताव करना चाहिए। भगवान् ने

इसके समस्त नियम बनाकर अंत में बताया—उपाध्याय और आचार्य को भिक्षुगण पिता के समान और उपाध्याय भिक्षुओं को पुत्र के समान समझें। इसके अतिरिक्त भगवान् ने नए शिष्यों के लिये कितने ही नियम बनाए। उपसपदा ग्रहण करने के नियम बनाए, भिक्षाचर्या, गृहस्थों से व्यवहार, भिक्षुओं की दिनचर्या आदि सभी आवश्यक नियम उपनियम बनाकर भिक्षुसंघ को एक सुव्यवस्थित और सुमर्यादित संस्था बना दिया। इस प्रकार भगवान् 'शास्ता' ने कठोर संघ-नियमों का अनुशासन (विधान) बनाकर अपनी शिष्यमंडली को एकत्रित करके अपने धर्म का मार्मिक सार निम्नलिखित बतलाया.—

सब्व पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा,
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं।

अर्थात्—समस्त पापों का त्याग करना, समस्त पुण्य-कर्मों का सचय करना और अपने चित्त को निर्मल एवं पवित्र करना, यही बुद्ध का अनुशासन है।

अनाथपिण्डिक का दान

पिता को तीन फलों में स्थित कर, भिक्षु संघ सहित भगवान् कपिलवस्तु से चलकर फिर अनेकों स्थानों में चारिका करते हुये एक दिन राजगृह जा **सीतवन** में ठहरे।

उस समय श्रावस्ती (कोशल) का **सुदत्त अनाथपिण्डिक** गृहपति पाँच सौ गाड़ियों में माल भर कर राजगृह जा अपने प्रिय बहनोई सेठ के घर ठहरा हुआ था। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुनी। फिर अत्यन्त प्रातःकाल उठा और खुले द्वार से बुद्ध के पास पहुँचा। धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठत हो, दूसरे दिन भिक्षु संघ सहित बुद्ध को महादान दिया और श्रावस्ती आने के लिए भगवान् (= शास्ता) से वचन लिया।

अनाथपिण्डिक ने रास्ते में पैंतालीस योजन तक लाख-लाख खर्च करके योजन-योजन पर विहार बनवाये। अशर्फी (= सुवर्ण) बिछाकर जेतवन मोल ले, उसने विहार बनवाया जिसके मध्य में दश-बलधारी बुद्ध की कुटी बनवायी। उसने इर्द-गिर्द अस्सी महास्थविरों के पृथक-पृथक निवास, एक दीवार, दो दीवार वाली हंस के आकार की लम्बी शालाएँ, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पुस्करिणियाँ, टहलान (= चंक्रमण), रात्रि के स्थान और दिन के स्थान बनवाये। इस प्रकार करोड़ों के खर्च से उस रमणीक स्थान में सुन्दर विहार बनवा, भगवान् को लिवा लाने के लिए दूत भेजा। भगवान् (= शास्ता) दूत का सन्देश पा महान भिक्षु-संघ के साथ राजगृह से निकल क्रमश श्रावस्ती नगर में पहुँचे।

महासेठ* भी विहार-पूजा की तैयारी पहले से ही कर चुका था। उसने तथागत के जेतवन में प्रवेश करने के दिन, सब अलंकारों से अलंकृत पाँच सौ कुमारों के साथ, सब अलंकारों से प्रतिमंडित अपने पुत्र को आगे भेजा। अपने साथियों सहित वह, पाँच रंग की चमकती हुई पाँच सौ पताकाएँ लेकर बुद्ध के आगे-आगे चला। उसके पीछे **महासुभद्रा** और **चूलसुभद्रा** नाम की दो पुत्रियाँ, पाच सौ कुमारियों के साथ पूर्ण घट लेकर निकलीं। उसके पीछे सब अलकारों से अलंकृत सेठ की देवी (भार्या) पाँच सौ स्त्रियों के साथ, भरा थाल लेकर निकली। उसके बाद सफेद वस्त्र धारण किए स्वयं सेठ तथा वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किए अन्य पाच सौ सेठों को साथ ले, भगवान् की अगवानी के लिए चला।

यह उपासक मण्डली आगे आगे जा रही थी पीछे-पीछे भगवान् महाभिक्षु-संघ से घिरे हुये, जेतवन को अपनी सुनहली शरीर प्रभा

---

* सेठ या श्रेणी नगर का अवैतनिक पदाधिकारी होता है। वह धनिक व्यापारियों में से बनाया जाता था।

से रंजित करते हुए, अनन्त बुद्ध लीला और अतुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुए। तब अनाथपिण्डिक ने उनसे पूछा—भन्ते! मैं इस विहार के विषय में कैसे क्या करूँ?

"गृहपति! यह विहार आए हुए तथा न आए हुए भिक्षु-संघ को दान कर दे।

'अच्छा भन्ते!' कह महासेठ ने सोने की झारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल—"मैं यह जेतवन विहार सब दिशा और काल के आगत-अनागत चतुर्दिश के बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को देता हूँ," कह प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान अनुमोदन करते हुए कहा—

"यह गर्मी-सर्दी से, हिंस्र जन्तुओं से, रेंगने वाले (सर्पादि) जानवरों से, मच्छरों से, बूँदा-बाँदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए उपयोगी है।" इसलिए बुद्ध ने विहार दान को श्रेष्ठ-दान (=अग्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है)' अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुन्दर विहार बनवाए और बहुश्रुतों को निवास कराये और प्रसन्न चित्त उन सरल चित्त वालों को अन्न पान, वस्त्र तथा निवास प्रदान करे। तब (ऐसा करने पर) वे सब दुःखों के नाश करनेवाले धर्म का उपदेश निश्चित और निर्विघ्न हो करने में समर्थ होते हैं। जिसे जानकर वे मलरहित (क्षीणाश्रव) निर्वाण को प्राप्त होंगे।

इस प्रकार विहार दान का माहात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथपिण्डिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा के प्रासाद (विशाखाराम) का पूजोत्सव चार महीने में समाप्त हुआ था। लेकिन अनाथपिण्डिक का विहार-पूजोत्सव नौ महीनों में समाप्त हुआ। विहार-पूजोत्सव में भी अनेक व्यय हुए। इस प्रकार उस विहार ही में करोड़ों धन भी दान किया।

भिक्षुणी संघ की स्थापना

महाराज शुद्धोदन की मृत्यु के बाद महाप्रजापति गौतमी शाक्य कुल की लगभग पाच सौ स्त्रियों को साथ लेकर प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा से कपिलवस्तु से पैदल चल मार्ग के कष्ट उठाती हुई वैशाली में आई। किंतु भगवान् के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करने की हिम्मत इस कारण न पड़ी कि कपिलवस्तु में वह उन्हें प्रवज्या देने से इनकार कर चुके थे। इस कारण वे सब मार्ग में ही एक जगह उदास भाव से बैठी चिंता कर रही थी। इतने में अकस्मात् बुद्ध-शिष्य आनंद से भेंट हो गई। आनन्द ने उनकी दुःख-कहानी सुन भगवान् के पास जाकर सुनाई और निवेदन किया—"भगवन्! आप प्राणि-मात्र के कल्याण के लिये अवतीर्ण हुए हैं, तो क्या ये शाक्य-स्त्रियाँ उन प्राणियों से बाहर हैं, जिनको आप अपनी दया से वंचित करते हैं?" इस प्रकार आनंद के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् ने कहा—"मैं उन्हें अपनी दया से वंचित नहीं करता हूँ, किंतु भिक्षु-व्रत अत्यत कठिन होने के कारण उन लोगों से पालन हो सकेगा या नहीं, मैं इस विचार में था। परंतु तुम्हारा अनुरोध और उन लोगों की इतनी लगन और उत्साह देखकर आदेश करता हूं कि यदि महाप्रजापती गौतमी एवं अन्य शाक्य-महिलाएँ आठ अनुलघनीय कठोर नियमो का पालन करें तो उन लोगों को दीक्षित करके उनका एक भिक्षुणी-सघ बना दिया जाय।" आनंद ने भगवान के बताये आठो नियमों को महाप्रजापती गौतमी को सुनाया। गौमती ने उन्हें सादर स्वीकार किया। तब भगवान् ने शाक्य-स्त्रियों को बुलवाया और उनको प्रव्रज्या तथा उपसपदा देकर भिक्षुणी-संघ का निर्माण किया।

विशाखा के सात्त्विक दान

महाराज प्रसेनजित के कोषाध्यक्ष मृगार के पुत्र पूर्णवर्धन की स्त्री का नाम विशाखा था। यह अंगराज के कोषाध्यक्ष धनंजय की पुत्री

थी। इसी विशाखा ने श्रावस्ती में एक 'पूर्वा राम' (विशाखा) नामक विहार बनवाकर भगवान् बुद्ध को सशिष्य रहने के लिये अर्पण किया था। यह भगवान् की परम भक्त थी। एक दिन भगवान् विशाखा के यहाँ आमन्त्रित होकर भोजन करने के लिये गये। भगवान् के भोजनोपरान्त की धार्मिक चर्चा द्वारा समुत्तेजित और सम्प्रहर्षित हो विशाखा ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! क्या मैं आपसे कुछ माँग सकती हूँ?" भगवान् ने कहा—तथागत वरों से परे हो गये हैं। विशाखा ने बड़ी नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन्! मेरी आठ बातें आप स्वीकार करें ये विहित और निर्दोष हैं:—

(१) बरसात के दिनों में वस्त्र-विहीन भिक्षुओं को बड़ा कष्ट मिलता है और उनको वस्त्र विहीन अवस्था में देखकर लोगों के चित्त में ग्लानि उत्पन्न होती है। इस कारण मैं चाहती हूँ कि संघ को वस्त्र-दान किया करूँ।

(२) श्रावस्ती में बाहर से आनेवाले भिक्षु, भिक्षा के लिये इधर-उधर भटकते फिरते हैं, इसलिये मैं उनको भोजन देना चाहती हूँ।

(३) बाहर जाने वाले भिक्षु भिक्षा के लिये पीछे रह जाते हैं और अपने निर्दिष्ट स्थान को देर में पहुँचते है इसलिये मैं उनके भोजन का भी प्रबंध करना चाहती हूँ।

(४) रोगी भिक्षुओं को उचित पथ्य और औषध नहीं मिलती, मैं चाहती हूँ कि उसका भी प्रबन्ध करूँ।

(५) संघ के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करनेवाले भिक्षुओं को भिक्षा माँगने के लिये समय नहीं मिलता। अतएव मैं चाहती हूँ कि उनके भोजन का भी प्रबंध कर दूँ।

भगवान् ने कहा—"हे विशाखे! तुम्हें इन बातों से क्या लाभ होगा?" उसने उत्तर दिया—"भगवान्! वर्षा-ऋतु के बाद जब

भिक्षु लोग भिन्न भिन्न स्थानों से श्रावस्ती में लौटकर आवेंगे और आपने किसी मृत भिक्षु के संबंध में बात करेंगे। तथा आप उसे असाधु कर्म त्यागकर साधु-जीवन ग्रहण करनेवाला, निर्वाण और अर्हत-पद के लिये यत्नवान तथा उसके जीवन की सफलता और निष्फलता का वर्णन करेंगे, तब मैं उनसे उस समय पूछूँगी—भन्तेगण ! क्या वह मृत भिक्षु श्रावस्ती में भी रह गया है ?" तब मुझे मालूम होगा कि वह यहाँ पहले रह गया है तो मैं समझूंगी कि उसने मेरे दिए हुए पदार्थों से अवश्य लाभ उठाया होगा। उस बात को याद कर मेरे चित्त में प्रमोद होगा। प्रमुदित होने से प्रीति उत्पन्न होगी, प्रीति युक्त होने पर काया शान्त होगी। काया शान्त होने पर सुख अनुभव करूँगी और सुखिनी होने पर मेरा चित्त समाधि को प्राप्त होगा। वह होगी मेरी इन्द्रिय भावना, बल-भावना और बोध्यंगभावना भगवान् ! इन्हीं गुणों को देख मैंने तथागत से ये वर मागे हैं।

तब भगवान् ने मृगार माता विशाखा की उन बातों को इन गाथाओं से अनुमोदन किया।

"जो शीलवती, सुगत की शिष्या प्रमुदित हो अन्न पान देती है
कृपणता को छोड़ शोक हारक, सुखदायक, स्वर्ग-प्रद दान को देती है।
वह निर्मल, निर्दोष, मार्गको पा दिव्य बल और आयु को प्राप्त होगी।
पुण्य की इच्छा वाली वह सुखिनी और निरोग हो चिरकाल तक प्रमोद करेगी।"

भगवान् के मुख से पवित्र सात्विक दान का वर्णन सुनकर विशाखा बड़ी संतुष्ट हुई और बोली—"भगवान् ! मेरी एक प्रार्थना और है उसे आप कृपा करके सुनें। भिक्षुणियां नग्न होकर सर्व-साधारण स्त्रियों के घाट पर नहाया करती हैं। इसलिये कुलटा स्त्रियाँ वहाँ उनकी हँसी उड़ाती और कहती हैं...हे भिक्षुणियों ! युवावस्था में काम का दमन करने से क्या लाभ ? तुम लोग वृद्धावस्था में वैराग्य-साधना करो। ऐसा करने से तुम्हें लोक और परलोक दोनों का सुख मिलेगा।' अतएव

भगवान् ! मेरी विनय है कि भिक्षुणी लोग नग्न होकर घाटों पर न नहाया करें।" आदि आठ वर उसने मागे। भगवान् ने यह बात स्वीकार करके नियम बना दिया।

सिंह की दीक्षा

एक समय जब भगवान् **वैशाली** में **महावन की कूटागार-शाला में** विहार करते थे ऐसे समय—

बहुत से प्रतिष्ठित-पतिष्ठित **लिच्छवि संस्थागार** (=गण-राज्य भवन) में बैठे, बुद्ध का गुण बखानते थे, धर्म और संघका गुण बखानते थे। उस समय निर्गंठों (=जैनों का श्रावक **सिंह सेनापति** उस सभा में बैठा था। तब सिंह सेनापति के चित्त में हुआ—निःसंशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, तभी तो यह बहुत से प्रतिष्ठित लिच्छवि उनका गुण बखान रहे हैं। क्यों न मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध के दर्शनके लिए जाऊँ।'

सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् को अभिवादन कर, एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापति ने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम **अक्रिया-वादी** है। अक्रिया के लिए धर्म उपदेश करते है, उसीकी ओर शिष्यों को ले जाते हैं। भन्ते ! जो ऐसा कहते है— 'श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है, क्या वह भगवान् के विषय में ठीक कहते है ? भगवान् की निन्दा तो नहीं करते ?

"सिंह ! ऐसा कारण है, जिस कारण से कहा जा सकता है—श्रमण [1]गौतम अक्रियावादी है'।

"सिंह ! क्या कारण है, 'श्रमण गौतम अक्रियावादी है ? सिंह ! मैं काय-दुश्चरित, वचन दुश्चरित, मन दुश्चरित को, अनेक प्रकारके पाप अकुशल धर्मों को अक्रिया कहता हूँ।

१. अं. नि. ८ १ २:२।

"सिंह! क्या कारण है जिस कारण से—'श्रमण गौतम क्रियावादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसी से श्रावकों को ले जाता है। सिंह! मैं काय-सुचरित (=अहिंसा, चोरी न करना, अ-व्यभिचार), वाक्-सुचरित (=सच बोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, बकवाद न करना), मन-सुचरित (=अ लोभ, अ द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकारके कुशल (=उत्तम) धर्मोंको क्रिया कहता हूँ। सिंह! यह कारण है जिस कारण से मुझे लोग कहते हैं कि 'श्रमण गौतम क्रियावादी है'।

"सिंह! क्या कारण है जिस कारण से ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—'श्रमण गौतम अस्ससन्त (=आश्वसन्त) है, आश्वास के लिए धर्म उपदेश करता है, उसीसे श्रावकों को ले जाता है'। सिंह! मैं परम आश्वास से आश्वासित हूँ, आश्वास के लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास (के मार्ग) से ही श्रावकों को ले जाता हूँ।

ऐसा कहने पर सिंह सेनापति ने भगवान्‌को कहा—

भन्ते! मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।"

"सिंह! सोच समझकर ऐसा करो। तुम्हारे जैसे सम्भ्रान्त मनुष्यों का सोच समझकर निश्चय करना ही अच्छा है।"

"भन्ते! भगवान् के इस कथन से मैं और भी सन्तुष्ट हुआ। भन्ते! दूसरे तैर्थिक मुझे श्रावक पाकर, सारी वैशाली में पताका उड़ाते—सिंह सेनापति हमारा श्रावक (=चेला) हो गया। लेकिन भगवान् मुझे कहते हैं—'सोच समझकर सिंह! ऐसा करो। यह मैं भन्ते! दूसरी बार भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघ की भी।'

"सिंह! तुम्हारा कुल दीर्घकाल से निगंठों के लिए प्याउकी तरह रहा है; उनके आनेपर पिंड न देना चाहिए' ऐसा मत समझना।"

ार जब भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिंडक के आराम
हार करते थे।

ह समय भगवान् पहिनकर, पात्र चीवर ले श्रावस्ती में
ए प्रविष्ट हुए। आयुष्मान् राहुल भी पूर्वाह्ण समय
र चीवर ले भगवान् के पीछे पीछे हो लिए। भगवान्ने
हुल को देखकर, सबोधित किया—

जो कुछ रूप है—भूत-भविष्य वर्तमान का शरीर के
यात्म) का, या बाहरका, महान् या सूक्ष्म, अच्छा या
समीप का—सभी रूप 'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूँ',
ात्मा है,' इस प्रकार यथार्थ जानकर देखना (=सम-
।"

हो भगवान्! रूपहीको सुगत!"

भी राहुल! वेदना को भी, सज्ञाको भी, संस्कारको भी,
, ।"

ष्मान् राहुल—'कौन आज भगवान् का उपदेश सुनकर
र के लिये जाये?' (सोच) वहाँ से लौटकर एक वृक्ष
न मार, शरीर को सीधा रख, स्मृति को सम्मुख ठहरा
। भगवान् ने आयुष्मान राहुल को वृक्ष के नीचे बैठा
सबोधित किया—

आणापान सति (=प्राणायाम) भावना की भावना
करो। आणापान-सति (=आनापान स्मृति) भावना
महाफलदायक, बड़े महात्म्यवाली होती है।"

ा. २ १ २।

तब राहुल सायंकाल को ध्यान से उठ, जहाँ भगवान् थे वहाँ जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् राहुल ने भगवान् को यह कहा—

भन्ते ! किस प्रकार भावना की गई, किस प्रकार बढ़ाई गई, आणापान सति महाफलदायक, बडे महात्म्यवाली होती है ?"

"राहुल ! जो कुछ भी शरीरमें (=अध्यात्म), प्रतिशरीर में (=प्रत्यात्म) कर्कश, खर्खरा है, जैसे—केश, लोम, नख, दाँत, चमड़ा मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थिमज्जा, वुक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, (=अंत गुण=आँत की रस्सी), पेट का मल। जो और भी कुछ शरीर में, प्रति शरीर में कर्कश है। यह सब ! अध्यात्म पृथ्वीधातु, कहलाती है। जो कुछ कि अध्यात्म पृथिवीधातु है, और जो कुछ वाह्य; यह सब पृथिवीधातु, पृथिवीधातु ही है। उसको 'यह मेरी नहीं', 'यह मैं नहीं हूं', 'यह मेरा आत्मा नहीं है इस प्रकार यथार्थत. जानकर देखना चाहिए। इस प्रकार इसे यथार्थत अच्छी प्रकार जानकर देखने से भिक्षु पृथिवी-धातु से उदास होता है, पृथिवी-धातु से चित्त को विरक्त करता है।

और क्या है राहुल ! आकाश-धातु ? आकाश-धातु आध्यात्मिक भी है, और वाह्य भी। आध्यात्मिक आकाश-धातु क्या है ? "राहुल ! जो कुछ शरीर में, प्रति शरीर में आकाश या आकाश-विषयक है, जैसे कि—कर्ण-छिद्र, नासिका-छिद्र, मुखद्वार जिससे अन्न-पान खादन-आस्वादन किया जाता है, और जहाँ खाना-पीना··ठहरना है, और जिससे कि आधोभाग से खाया-पिया—वाहर निकलता है। और जो कुछ और भी शरीरमें प्रति शरीर में आकाश या आकाश-विषयक है। यह सब राहुल ! आध्यात्मिक आकाश धातु कही जाती है। जो कुछ आध्यात्मिक आकाश-धातु है, और जो कुछ वाह्य आकाश-धातु है, वह सब आकाश-धातु ही है।

"राहुल ! पृथिवी समान भावना की भावना (=ध्यान) कर । पृथिवी समान भावना की भावना करते हुए, तेरे चित्त को, अच्छे लगनेवाले स्पर्श —चित्त को चारों ओर से पकड़कर न चिमटेंगे। जैसे राहुल ! पृथिवीमें शुचि (=पवित्र वस्तु) भी फेंकते हैं, अशुचि भी फेंकते है। पाखाना भी, पेशाव, कफ, पीव, लोहू, पर उससे पृथिवी दुखी नहीं होती, ग्लानि नहीं करती, घृणा नहीं करती। इसी प्रकार तू राहुल ! पृथिवी-समान भावना की भावनाकर । पृथिवी समान भावना करके राहुल ! तेरे चित्त को अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्त को न चिमटेंगे ।

आप (=जल), तेज (=अग्नि) तथा वायु समान अपने को वनाओ। क्योंकि जैसे राहुल, जल में शुचि भी धोये जाते हैं, तेज (अग्नि) शुचि को भी जलाता है और राहुल, जैसे वायु शुचि के पास भी वहता है तो भी अपने-अपने गुणों को नही खोते। तभी प्रतिकूल वातावरण मे अपने चित्त को वशीभूत न होने दे ।

राहुल ! जैसे आकाश किसी पर प्रतिष्ठित नहीं । उसी प्रकार तू आकाश-समान भावना की भावना कर। आकाश समान भावनाकी भावना करने पर, उत्पन्न हुये मन को अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्त को चारों ओर से पकड़कर चित्त को न चिमटेंगे।

"मैत्री (=सबको मित्र समझना)-भावना की भावना कर। मैत्री भावना की भावना करने से जो व्यापाद (=द्वेष) है, वह छूट जायगा ।

"करुणा-(=सर्व प्राणिपर दया करना) भावना की भावना कर । करुणा भावना की भावना करने से राहुल ! जो तेरी विहिंसा (=पर-पीड़ा प्रवृत्ति) है, वह छूट जायगी।

"मुदिता (=सुखी को देख प्रसन्न होना)-भावनाकी भावना कर ।

इससे राहुल ! जो तेरी अ-रति (=मन न लगना) है वह हट जायगी।

"राहुल ! उपेक्षा (=शत्रु की शत्रुता की उपेक्षा)-भावना की भावना कर। इससे जो तेरा प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) है, वह हट जायेगा।

'राहुल ! अ-शुभ (=सभी भोग बुरे हैं)-भावनाकी भावना करने से जो तेरा राग है, वह चला जायगा।

"राहुल ! अनित्य-संज्ञा (=सभी पदार्थ अ-नित्य हैं)-भावनाकी भावना करोगे तो तेरा अस्मिमान (=अहंकार छूट जायगा।

"राहुल ! आणापान-सति (=प्राणायाम) भावना की भावना कर। आणापानसति भावना करना-बढाना, महा फल प्रद है। आणापान-सति भावना भावित होने पर, बढाई जानेपर कैसे महाफल प्रद होती है ? राहुल ! भिक्षु अरण्य में वृक्ष के नीचे, या शून्य-गृहमें, आसन मारकर, शरीर को सीधा धारण कर, स्मृति को सम्मुख रख, बैठता है। वह स्मरण रखते सास छोड़ता है, स्मरण रखते सास लेना है, लम्बी सास छोडते 'लम्बी सास छोड़ रहा हूँ' जानता है। लम्बी सास लेते 'लम्बी सास ले रहा हूँ' जानता है। छोटी सास छोड़ते, छोटी सास लेते। सारे काम को अनुभव (=प्रतिसंवेदन) करते सास छोड़' सीखता है। सारे काम को अनुभव करते साँस लूँ' इस प्रकार स्मृति मान होता है। काया के संस्कारों को दवाते हुए स्मृतिमान होता है। 'प्रीति को अनुभव करते 'सुख अनुभव करते। 'चित्त के संस्कार को अनुभव करते। 'चित्त संस्कार को दवाते हुए चित्त को अनुभव करते'। 'चित्तको प्रमुदित करते। 'चित्त को समाधान करते। 'चित्त को राग आदि से विमुक्त करते, 'सब पदार्थों को अनित्य देखनेवाला हो,। 'सब पदार्थों में विराग की दृष्टि, से 'सब पदार्थों में निरोध (=विनाश) की दृष्टि से, '(सब पदार्थों में) परित्याग की

दृष्टि से देखना, सीखता है। राहुल ! 'इस प्रकार भावना की गई, बढाई गई आणा-पान सति महा फलदायक और बड़े महात्म्यवाली होती है।

तेविज्ज

भगवान् [1]**कोसल** देश में पाच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षु संघ के साथ चारिका करते, जहा **मनसाकट** नामक कोसलों का ब्राह्मण-ग्राम था उसके पास **अचिरवती** नदी के तीर आम्रवन में विहार करते थे।

उस समय बहुत से जैसे कि—[2]**चंकि** ब्राह्मण **तारुक्स** ब्राह्मण, **पोक्खरसाति** ब्राह्मण, **जानुस्सोणि** ब्राह्मण, **तोदेय्य** ब्राह्मण और दूसर भी अभिज्ञात (=प्रसिद्ध) ब्राह्मण महाशाल (=महाधनिक) निवास करते थे।

चहलकदमी के लिये टहलते हुए, **वाशिष्ट** और **भारद्वाज** में रास्ते में बात उत्पन्न हुई। **वाशिष्ट** माणवक ने कहा—

"यही मार्ग (वैसा करने वाले को) ब्रह्म-सलोकता के लिये जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला हैं; जिसे कि यह ब्राह्मण पोष्कर-साति ने कहा है।"

भारद्वाज माणवक ने कहा—"यही मार्ग है, जिसे कि ब्राह्मण **तारुक्ष** ने कहा है।"

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवक को नहीं समझा सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ठ माणवक को ही समझा सका।

तव **वाशिष्ठ** और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहां भगवान् थे, वहा गये और वाशिष्ट माणवक ने भगवान् से कहा—

---

१. उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, गोंडा, वहराइच, सुल्तानपुर बाराबंकी, और बस्ती जिले, तथा गोरखपुर जिले का कितना ही

"हे गौतम ! मार्ग-अमार्ग के संबन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग्य ब्राह्मण, छन्दावा ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य-अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं। तब भी वह वैसा करनेवाले ब्रह्मा की सलोकता को पहुँचाते है। जैसे हे गौतम ! ग्राम या निगम के अ-दूर में बहुत से नाना मार्ग होते हैं, तो भी वे सभी ग्राम में ही जाने वाले होते हैं। ऐसे ही हे गौतम ! ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं, जिससे वे ब्रह्मा की सलोकता को पहुँचाते है।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचते हैं' कहते हो?" "हां, पहुँचते हैं' कहता हूँ !"

"वाशिष्ट ! 'त्रैविद्य ब्राह्मणों में एक भी ब्राह्मण है, जिसने ब्रह्मा को अपनी आख से देखा हो ?"

"नहीं हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणों का एक भी आचार्य है, जिसने ब्रह्मा को अपनी आख से देखा हो ?"

"नहीं हे गौतम !"

त्रैविद्य ब्राह्मणों का एक भी आचार्य-प्राचार्य है ?"नहीं हे गौतम !"

क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणों के आचार्य की सातवीं पीढी तक में कोई है ?

"नहीं हे गौतम !"

क्या वाशिष्ट ! जो त्रैविद्य ब्राह्मणों के पूर्वज, मन्त्रों के कर्ता, मन्त्रों के प्रवक्ता ऋषि थे—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मंत्र पद को आजकल त्रैविद्य ब्राह्मण अनुगान, अनुभाषण, करते हैं, भाषित को अनुभाषण करते हैं, वाचे को अनु-वाचन करते हैं, जैसे कि

भाग। २ चकि ओपसाद निवासी, तारुक्ख इच्छानंगल निवासी, पोक्खरसाति उक्कठा-वासी, जानुस्सोणि श्रावस्ती-निवासी, तोदेय्य तुदीगाम-निवासी थे।

अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भरद्वाज, वाशिष्ट, काश्यप, भृगु। उन्होंने भी क्या यह कहा—जहा ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, हम यह जानते हैं, हम यह देखते हैं!

"नहीं हे गौतम!"

इस प्रकार वाशिष्ठ! त्रैविद्य ब्राह्मणों में एक ब्राह्मण भी नहीं जिसने ब्रह्मा को अपनी आख से देखा हो। एक आचार्य या एक आचार्य-प्राचार्य भी। सातवीं पीढ़ी तक के आचार्यों में भी नहीं जो त्रैविद्य ब्राह्मणों[१] के पूर्ववाले ऋषि और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं।'–'जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकता के लिये हम मार्ग उपदेश करते है' यही मार्ग ब्रह्म-सलोकता के लिये जल्दी पहुँचाने वाला है!

तो क्या मानते हो, वाशिष्ट! क्या ऐसा होने पर त्रैविद्य ब्राह्मणों का 'कथन अ-प्रामाणिकता को नहीं प्राप्त हो जाता है!

"अवश्य, हे गौतम! ऐसा होने पर त्रैविद्य ब्राह्मणों का कथन अप्रामाणिकता को प्राप्त हो जाता है।"

"जैसे वाशिष्ट! अन्धों की पाँती एक दूसरे से जुड़ी, पहिले वाला भी नहीं देखता, बीचवाला भी नहीं देखता, पीछेवाला भी नहीं देखता अन्ध-वेणी के समान ही त्रैविद्य ब्राह्मणों का कथन है अत. उन त्रैविद्य ब्राह्मणों का कथन प्रलाप ही ठहरता है,। तो वाशिष्ट! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य को तथा दूसरे बहुत से जनों को, देखते हैं, कि कहाँ से वह उगते हैं, कहाँ डूबते हैं, जो कि उनकी प्रार्थना करते हैं, हाथ जोड़कर नमस्कार करते घूमते हैं?"

हाँ, हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य तथा दूसरे बहुत जनों को देखते है।

---

१. तीनों वेदों के ज्ञाता।

तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्र सूर्य या दूसरे बहुत जनों को देखते हैं, कहाँ से वे उगते है ? क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य की सलोकता (=सहव्यता = एक स्थान निवास) के लिये मार्ग का उपदेश कर सकते हैं —'यही वैसा करने वाले को, चन्द्र-सूर्य की सलोकता के लिये सीधा मार्ग है ?

नहीं हे गौतम !

इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते है, प्रार्थना करते हैं उन चन्द्र सूर्य की सलोकता के लिये भी मार्ग का उपदेश नहीं कर सकते, कि यही सीधा मार्ग है'; तो फिर ब्रह्मा को—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणों ने अपनी आँखो से देखा न पूर्व वाले ऋषियों ने ही। तो क्या वाशिष्ट ! ऐसा होने पर त्रैविद्य ब्राह्मणों का कथन अप्रामाणिक (=अप्पाटिहारक) नहीं ठहरता ?

अवश्य, हे गौतम !

अच्छा वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते हैं, जिसे न देखते हैं, उसकी सलोकता के लिये मार्ग उपदेश करते है —'यही सीधा मार्ग है'। यह उचित नहीं। जैसे कि वाशिष्ट ! कोई पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) मे जो जनपद'कल्याणी (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ। तब उसको यह पूछें—हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा, 'उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है' ? ऐसा पूछने पर 'हें' कहे। तो—वाशिष्ट ! क्या ऐसा होने पर उस पुरुष का भाषण अ-प्रामाणिक नहीं ठहरता ?

अवश्य हे गौतम !

"साधु, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको नहीं जानते उसे उपदेश करते हैं। जैसे कोई पुरुष चौरास्तेपर महल पर चढने के लिये सीढी बनावे, यह युक्त नहीं।"

"साधु, वाशिष्ट ! । यह युक्त नहीं । जैसे वाशिष्ट ! इस अचिरवती (=राप्ती) नदी की धार उदक से पूर्ण (=समतित्तिका) काकपेया हो, तब पार जाने की इच्छा वाला पुरुष आवे, वह इस किनारे पर खड़े हो दूसरे तीर को आह्वान करे—'हे पार ! इस पार चले आओ ।' 'हे पार ! इस पार चले आओ'; तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! क्या उस पुरुष के आह्वान के कारण, या याचना के कारण, या प्रार्थना के कारण, या अभिनन्दन के कारण अचिरवती नदी का पार वाला तीर इस पार आ जायेगा ?"

"नहीं हे **गौतम** !"

"हम इन्द्र को आह्वान करते हैं, ईशान को आह्वान करते हैं, प्रजापति को आह्वान करते हैं, ब्रह्मा को आह्वान करते हैं, महर्द्धि को आह्वान करते हैं, यमको आह्वान करते हैं ।' जो ब्राह्मण बनाने वाले धर्म हैं उनको छोड़कर, आह्वान के कारण काया छोड़ने पर मरने के बाद ब्रह्मा की सलोकता को प्राप्त हो जायेंगे, यह संभव नहीं है ।

वाशिष्ट ! इस अचिरवती नदी की धार उदक-पूर्ण, (करार पर बैठे) कौवे को भी पीने लायक हो । उससे पार जाने की इच्छा वाला पुरुष आवे । वह इसी तीर पर दृढ़ साँकल से पीछे बाँह करके मजबूत बंधन से बँधा हो । वाशिष्ट ! क्या वह पुरुष अचिरवती के इस तीर से परले तीर चला जायेगा ?

"नहीं, हे **गौतम** !"

"इसी प्रकार यहाँ पाँच काम-गुण आर्य-विनय में जंजीर कहे जाते हैं, बंधन कहे जाते हैं । कौन से पाँच ? (१) चक्षु से विज्ञेय इष्ट= कांत = मनाप = प्रिय रूप काम-युक्त, रूप रागोत्पादक है । (२) श्रोत्र से विज्ञेय शब्द । घ्राण से विज्ञेय गंध । (३) जिह्वा से विज्ञेय रस । (४) काय (=त्वक्) से विज्ञेय स्पर्श । वाशिष्ट ! यह पाँच काम-गुण बंधन कहे जाते हैं । वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच काम-

गुणों से मूर्छित, लिप्त, अपरिणाम-दर्शी हैं, इनसे निकलने का ज्ञान न करके (=अनिस्सरण पञ्ञा) भोग रहे हैं। अहो !! यह त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनाने वाले धर्म हैं, उन्हें छोड़कर, पाँच काम-गुणों को भोग करते हुये, कामके बंधन में बँधे हुये, काया छूटने पर, मरने के बाद ब्रह्माओं की सलोकता को प्राप्त होंगे, यह संभव नहीं !

"वाशिष्ठ ! इस अचिरवती नदी की धार के पास कोई पुरुष आवे; वह इस तीर पर मुँह ढाँककर लेट जाये । तो क्या वह परले तीर चला जायगा ?'

"नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे ही, वाशिष्ट ! यह पाँच नीवरण आर्य-विनय (= आर्य-धर्म, बौद्ध-धर्म) में आवरण भी कहे जाते हैं, नीवरण भी कहे जाते है, परि-अवनाह (= बंधन) भी कहे जाते हैं । कौन से पाँच ? (१) कामच्छन्द नीवरण, (२) व्यापाद, (३) स्त्यान मिद्ध, (४) औद्धत्य-कौकृत्य और, (५) विचिकित्सा । वाशिष्ट ! यह पाँच नी-वरण आर्य-विनय में आवरण भी कहे जाते हैं । त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच नीवरणों से आवृत, बँधे हैं।

"तो क्या तुमने वाशिष्ट ! ब्राह्मणों के वृद्ध =महल्लकों, आचार्य-प्राचार्यों को कहते सुना है—ब्रह्मा-सपरिग्रह है, या अपरिग्रह ? "अ-परिग्रह, हे गौतम !"

स-वैर-चित्त, या वैर-रहित चित्तवाला ? "अवैर-चित्त हे गौतम !"

स-व्यापाद (=द्रोह)-चित्त या व्यापाद-रहित चित्तवाला ? "अव्यापाद-चित्त हे गौतम !"

संक्लेश (=मल)-युक्त चित्तवाला या असंक्लिष्ट-चित्त ? "असं-क्लिष्ट-चित्त हे गौतम !"

"वशवर्ती (=अपरतंत्र, जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्ती ?" वश-वर्ती हे गौतम !

तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह हैं या अपरिग्रह ?
स-परिग्रह, हे गौतम !

सवैर-चित्त ? सव्यापाद-चित्त ? संक्लिष्ट-चित्त ? या वशवर्ती ?
"अ-वशवर्ती हे गौतम !"

इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह हैं और ब्रह्मा अ-परिग्रह हैं। क्या सपरिग्रह, सवैर-चित्त त्रैविद्य ब्राह्मणों का परिग्रह (=स्त्री) रहित अवैरचित्त ब्रह्मा के साथ समान होना, या मिलना हो सकता है ?

"नहीं, हे गौतम !"

ऐसा कहने पर वाशिष्ट माणवक ने भगवान् को कहा—मैंने यह सुना है कि श्रमण गौतम ब्रह्माओं की सलोकता का मार्ग उपदेश करता है अच्छा हो आप गौतम हमें ब्रह्मा की सलोकता के मार्ग का उपदेश करें।"

"वाशिष्ट ! यहाँ लोक में भिक्षु शरीर के चीवर और पेट के भोजन से सन्तुष्ट होता है। इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु शील-संपन्न होता है।[२] और वह अपने को इन पाँच नीवरणों से मुक्त देख, प्रमुदित होता है। प्रीतिमान् का शरीर स्थिर शांत होता है। प्रश्रब्ध (=शांत) शरीरवाला सुख अनुभव करता है, सुखित का चित्त एकाग्र होता है।

वह मित्र-भाव युक्त चित्त से सारे ही लोक को मित्र-भाव-युक्त, विपुल, महान्, अप्रमाण, वैर-रहित, द्रोह रहित चित्त से स्पर्श करता विहरता है। यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओं की सलोकता का मार्ग है।

और फिर वाशिष्ट ! वह करुणा-युक्त चित्त से, उपेक्षा-युक्त चित्त से सारे ही लोक को उपेक्षा-युक्त विपुल, महान्, अ-प्रमाण, वैर-रहित,

[२] कुछ अंश ऋग् १:३५: १; यजुः ३४ ३४-३५ में हैं।

द्रोह-रहित चित्त से स्पर्श करके विहरता है। यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओं की सलोकता का मार्ग है।

तो वाशिष्ट ! इस प्रकार के विहार वाला भिक्षु, सपरिग्रह है या अ-परिग्रह ? "अ-परिग्रह हे गौतम !"

स-वैर-चित्त या अ-वैर-चित्त ? "अ-वैर-चित्त हे गौतम !"

कुटदन्त

एक समय पाच सौ भिक्षुओं के महान् भिक्षु-संघ के साथ भगवान् मगध-देश में चारिका करते, मगधों के खाणुमत नामक प्रदेश में एक ब्राह्मण-ग्राम की अम्बलट्ठिका(=आम्रयष्टिका) में विहार करते थे।

उस समय कुटदंत ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सपन्न राज-भोग्य राजा मगध श्रेणिक बिम्बिसार-द्वारा दत्त, राज-दाय ब्रह्मदेय खाणुमत का स्वामी होकर रहता था। उस समय कुटदन्त ब्राह्मण को महायज्ञ उपस्थित हुआ था। सात सौ बैल, सात सौ बच्छे सात सौ बछियां, सात सौ बकरिया, सात सौ मेढ़ें यज्ञ के लिये स्थूण (=खम्भे) पर लाई गई थीं।

खाणुमतवासियों ने भी सुना—शाक्य-कुल मे प्रव्रजित शाक्य पुत्र श्रमण गौतम अम्बलट्ठिका में विहार करते हैं और उनका बहुत मंगल-कीर्ति-शब्द फैला हुआ है।

तब कुटदन्त ब्राह्मण अपने महान् ब्राह्मण-गण के साथ, अम्बलट्ठिका में, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान् के साथ संमोदन किया और कहा—

"हे गौतम ! मैंने सुना है कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदा को जानते हैं। मैं सोलह-परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदा को नहीं जानता। मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ

अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदा का मुझे उपदेश करें।"

भगवान् बोले कुटदन्त—

'पूर्व-काल में ब्राह्मण ! महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोना चाँदी वाला, बहुत-वित्त-उपकरण (=साधन) वाला, बहुधन-धन्यवान्, भरे कोश-कोष्ठागार वाला, **महाविजित** नामक एक राजा था। उस राजा महाविजित को एकान्त में विचारते चित्त में यह ख्याल उत्पन्न हुआ—'मुझे मनुष्यों के विपुल भोग मिले हैं, मैं महान् पृथिवी-मण्डल को जीतकर शासन करता हूँ। क्यों न मैं महायज्ञ करूँ; जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुख के लिए हो।' तब ब्राह्मण राजा महाविजित ने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाकर कहा - ब्राह्मण ! यहाँ एकान्त में बैठ विचारते, मेरे चित्त में यह ख्याल उत्पन्न हुआ—क्यों न मैं महायज्ञ करूँ और वह अपने पुरोहित से कहा ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो चिरकाल तक मेरे हित सुख के लिए हो।' ऐसा कहने पर ब्राह्मण पुरोहित ब्राह्मण ने राजा महाविजित को कहा—'आपका देश सकंटक, उत्पीड़ा-सहित है—राज्य में ग्राम-घात =ग्रामों की लूट=भी दिखाई पड़ते हैं, बट-मारी भी देखी जाती है। आप ऐसे सकटक उत्पीड़ा सहित जनपद से बलि (=कर) लेते हैं। इससे आप इस देश के अकृत्यकारी हैं। शायद आप—का विचार हो, दस्यु कील को हम वध, बधन हानि, निर्वासन से उखाड़ देंगे। लेकिन इस दस्यु कील (=लूट-पाट रूपी कील) को, इस प्रकार अच्छी तरह नहीं उखाड़ा जा सकता। जो मरने से बच रहेंगे, वह पीछे राजा के जनपद को सतायेंगे। यह दस्युकील इस उपाय से भली प्रकार उन्मूलन हो सकता है - राजन ! जो कोई आपके जनपद में कृषि-गोपालन करने का उत्साह रखते हैं, उनको आप बीज और भोजन सम्पादित करें।

वाणिज्य करने का उत्साह रखते हैं, उन्हें आप··पूँजी (=प्राभृत) दें। जो राजपुरुषाई (=राजा की नौकरी) करने का उत्साह रखते हैं उन्हें आप भत्ता-वेतन दे काम लें। इस प्रकार वह लोग अपने काम में लगे, राजा के जनपद को नहीं सतायेंगे। और आपको महान धन-धान्य की राशि प्राप्त होगी, जनपद (=देश) भी पीड़ा रहित, कटक रहित, क्षेम-युक्त होगा। मनुष्य भी गोद में पुत्र को नचाते से, खुले घर विहार करेंगे, राजा महाविजित ने पुरोहित ब्राह्मण को 'अच्छा भो ब्राह्मण !' कह जो राजा के जनपद में कृषि-गोरक्षा में उत्साही थे, उन्हें राजा ने बीज एवं भत्ता सम्पादित किया। जो राजा के जनपद में वाणिज्य में उत्साही थे, उन्हें पूँजी सम्पादित की। जो राजा के जनपद में राज-पुरुषाई में उत्साही थे उनको भत्ता एव वेतन ठीक कर दिया। उन मनुष्यों ने अपने अपने काम में लग, राजा के जनपद को नहीं सताया। राजा को महान धन राशि मिली। जनपद अकंटक अपीड़ित, क्षेम-स्थिति हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, हो गोद में पुत्रों को नचाते से खुले घर विहार करने लगे।

"ब्राह्मण ! तब राजा महाविजित ने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाकर कहा- 'भो ! मैंने दस्युकील उखाड़ दिया। मेरे पास महान् धनराशि है। हे ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुख के लिए हो'। तो आप जो आपके जनपद में जानपद (=ग्राम के) नैगम (=शहर एव कस्बे) के अनुयुक्त क्षत्रिय हैं, आप उन्हें कहें—'मैं ! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (=आज्ञा) करें, जो मेरे चिर-काल तक हित-सुख के लिए हो'। राजा महाविजित ने ब्राह्मण पुरोहित को 'अच्छा भो कहकर, जो राजा के जनपद में अनुयुक्त क्षत्रिय, अमात्य पारिषद्य, ब्राह्मण महाशाल, गृहपति नैचयिक (=धनी) थे, उन्हें आमन्त्रित किया—'भो ! मैं महायज्ञ करना

चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करें जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुख के लिए हो' । राजा ! आप यज्ञ करें महाराज यह यज्ञ का काल है ।'

ब्राह्मण ! उस यज्ञ में गायें नहीं मारी गईं, बकरे-भेड़ें नहीं मारे गए, मुर्गे सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकार के प्राणी मारे गए । न यूप के लिए वृक्ष काटे गये । न परहिंसा के लिये दर्भ काटे गये । जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दंड-तर्जित भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुए सेवा नहीं की । जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया । जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया । घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, गुड़, (=फाणित) से ही वह यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हुआ ।

तब ब्राह्मण ! नैगम-जानपद अनुयुक्त क्षत्रिय, अमात्य-पार्षद महाशाल (=धनी) ब्राह्मण, नैचयिक गृहपति (=धनी वैश्य) बहुत सा धन-धान्य ले, राजा महाविजित के पास जा कर, ऐसा बोले—'यह देव ! बहुत सा धन-धान्य देव के लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें' ।

इस प्रकार चार अनुमति-पक्ष, आठ अंगों से युक्त राजा महाविजित; चार अंगों से युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधिया हुई । ब्राह्मण ! इसे ही त्रिविध यज्ञ-संपदा और सोलह-परिष्कार कहा जाता है ।

हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-संपदा से भी कम सामग्री (=अर्थ) वाला, कम क्रिया (=समारंभ)-वाला, किंतु महा-फल दायी कोई यज्ञ है ?

"हे ब्राह्मण ! इससे भी महाफलदायी ।"

"ब्राह्मण! वह जो प्रत्येक कुल में शीलवान् (=सदाचारी- प्रव्रजितों, के लिए नित्यदान दिये जाते हैं। ब्राह्मण! कोई यज्ञ इससे भी महाफल-दायी है।"

"हे गौतम! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो यह नित्यदान अनु-कुल-यज्ञ है। इससे भी महाफलदायी है?"

"ब्राह्मण! इस प्रकार के (महा) यागों में अर्हत् (=मुक्तपुरुष) या अर्हत्-मार्गारूढ़ नहीं आते। सो किस हेतु? ब्राह्मण! यहाँ दंड प्रहार और गल-ग्रह (=गला पकड़ना) भी देखा जाता है। इसलिये इस प्रकार के यागों में अर्हत् नहीं आते। जो कि वह नित्यदान है, इस प्रकार के यज्ञ में ब्राह्मण! अर्हत् आते हैं। सो किस हेतु? यहाँ ब्राह्मण दंड प्रहार, गलग्रह नहीं देखे जाते। इसलिये इस प्रकार के यज्ञ में। ब्राह्मण! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्यदान उससे भी महाफल-दायी है।"

"हे गौतम! क्या कोई दूसरा यज्ञ इस सोलह-परिष्कार-सहित त्रिविधयज्ञ से भी अधिक फलदायी नित्यदान अनु-कुल-यज्ञ से भी अल्प-सामग्री वाला अल्प-समारम्भवाला और महामाहात्म्यवाला है?"

"है, ब्राह्मण!"

ब्राह्मण! यह जो चारों दिशाओं के संघ के लिए (=चातुर्दिस संघं उद्दिस्स) विहार बनवाना है।

'हे गौतम? क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस त्रिविधयज्ञ से भी, इस नित्यदान से भी, इस विहार दान से भी अल्प-सामग्रीक अल्प-क्रिया वाला और महाफलदायी महामाहात्म्यवाला है?"

"है, ब्राह्मण?।"

ब्राह्मण! यह जो प्रसन्न चित्त हो बुद्ध (=परमतत्त्वज्ञ) की शरण जाना है, धर्म (=परमतत्त्व) की शरण जाना है संघ

(=परमतत्व-रत्नक-समुदाय) की शरण जाना है, ब्राह्मण ! यह यज्ञ इस त्रिविध यज्ञ से भी उत्तम है।"

'हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ इन शरण गमनों से भी अल्प-सामग्रीक, अल्प-क्रियावान् और महाफलदायी महात्म्यवान् है ?"

है ब्राह्मण ?

"ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न (=स्वच्छ) चित्त (हो) शिक्षापद (=यम-नियम) ग्रहण करना है—(१) प्राणातिपात-विरमण (=अ-हिंसा) (२) अदिन्नादान-विरमण (=अ-चोरी), (३) काम मिथ्याचार-विरमण (=अव्यभिचार), (४) मृषावाद-विरमण (=झूठ त्याग), (५) सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थान विरमण (=नशात्याग)। यह यज्ञ ब्राह्मण ! इन शरण-गमनों से भी महात्म्यवान् है।"

इस प्रकार शीलसंपन्न हो प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरता है। ब्राह्मण ! यह यज्ञ पूर्व के यज्ञों से अल्प-सामग्रीक और महामाहात्म्यवान् है।"

"ज्ञान दर्शन के लिए चित्त को लगाना, चित्तको झुकाना जो है। ब्राह्मण ! इस यज्ञ-सम्पदा से उत्तरितर (=उत्तम)=प्रणीततर दूसरी यज्ञ-सपदा नहीं है।"

यह सुन वह कूटदन्त ब्राह्मण यह उदान कहा।

"हे गोतम ! आश्चर्य ! हे गौतम ! आश्चर्य ! और मैं भगवान् गौतम की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघ की भी। आप गौतम आज से मुझे अजलि-बुद्ध उपासक धारण करें। और मैं उन सात सौ बैलों, सात सौ बछड़ों, सात सौ बछियों, सात सौ बकरों, सात सौ भेड़ों को छोड़वा देता हूँ, जीवन-दान देता हूँ, वह हरी घास खावें, ठंडा पानी पीवें, ठंडी हवा उनके लिए चलै !"

सिगालोवाद-सुत्त

एक समय भगवान् राजगृह में वेणुवन-कलन्द-निवाप में विहार करते थे। उस समय सिगाल (=शृगाल) नामक गृहपति-पुत्र सवेरे ही उठकर, राजगृह से निकल कर, भीगे वस्त्र, भीगे-केश, हाथ जोड़े, पूर्व दिशा, दक्षिण-दिशा, पश्चिम-दिशा, उत्तर-दिशा, नीचे की दिशा, ऊपर की दिशा—नाना दिशाओं को नमस्कार कर रहा था।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय चीवर पहिन कर पात्र-चीवर ले, राजगृह में भिक्षा के लिए जाते हुए सिगाल को नाना दिशाओं को नमस्कार करते देखा। देखकर उससे यह कहा—

"गृहपति-पुत्र! तू यह क्या, कर रहा है?"

भन्ते! मेरे पिता ने मरते वक्त मुझे यह कहा है—'तात! दिशाओं को नमस्कार करना।' सो मैं भन्ते! पिता के वचन का सत्कार करके, मान करके सवेरे ही उठ कर नमस्कार कर रहा हूँ।"

"गृहपति पुत्र! आर्य-विनय (=आर्यधर्म) में इस तरह छ दिशायें नहीं नमस्कार की जातीं?"

गृहपति पुत्र! जब आर्य-श्रावक के चार कर्म-क्लेश छूट जाते हैं। चार स्थानों से (वह) पाप-कर्म नहीं करता। भोगों (=धन) के विनाश के छ कारणों को नहीं सेवन करता। इस प्रकार चौदह पापों (=बुराइयों) से रहित हो, छ दिशाओं को आच्छादित कर, दोनों लोकों के विजय में संलग्न होता है। उसका यह लोक भी आराधित होता है, परलोक भी। वह काया छोड़ने पर मरने के बाद, सुगति स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

भगवान् ने यह कहा—

"प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद (जो) कहा जाता है।
और परदार-गमन (इनकी) पंडित प्रशंसा नहीं करते॥

चूँकि गृहपति पुत्र! आर्य श्रावक न छन्द (=स्वेच्छाचार) के

रास्ते जाता है। न द्वेष के, न मोह के और न भय के। अत इन चार स्थानों से पापकर्म नहीं करता।—भगवान् सुगत ने फिर यह भी कहा—

"छन्द, द्वेष, भय और मोह से जो धम को अतिक्रमण करता है।
कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की भाँति, उसका यश क्षीण होता है।
छन्द द्वेष, भय और मोह से जो धर्म को अतिक्रमण नहीं करता।
शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति, उसका यश वढता है॥

"कौन से छ भोगों के अपायमुख (=विनाश के कारण) हैं।

[१]"गृहपति-पुत्र! शराव नशा आदि के सेवन में यह छ दुष्परिणाम हैं (१) तत्काल धन की हानि। (२) कलहका वढना। (३) यह रोगोंका उत्पन्न। (४) अयश उत्पन्न करनेवाला है। (५) लज्जा नाश कराने वाला है। और [२] (६) बुद्धि (=प्रज्ञा) को दुर्वल करता है।

"गृहपति-पुत्र! विकाल में चौरस्ते की सैर के चार दुष्परिणाम हैं। (१) स्वय भी वह अ-गुप्त =अ-रक्षित होता है। (२) उसके स्त्री-पुत्र भी अ-गुप्त=अरक्षित होते हैं। (३) उसकी धन-सम्पत्ति भी अरक्षित होती है। (४) बुरी वातों की शंका होती है। (५) झूठी बात उसपर लागू होती है। (६) वहुत से दु ख कारक कामों का करने वाला होता है।

[३]"गृहपति-पुत्र! समज्याभिचरण में छ दोष (=आदिनव) हैं। (१) (आज) कहाँ नाच है। (२) कहाँ वाद्य है। [३] कहाँ आख्यान है? (४) कहाँ पाणिस्वर [हाथ से ताल देकर नृत्य गीत] है? [५] कहाँ कुम्भ-थूण [वादन-विशेष] इसकी परेशानी है?—

[४]"गृहपति-पुत्र! द्यूत-प्रमाद स्थान के व्यसन में छ दोष हैं (१) होने पर वैर उत्पन्न करता है। (२) पराजित होने पर (हारे) धनकी सोच करना है। (६) तत्काल धन का नुकसान।(४) सभा में जानेपर वचन का विश्वास नहीं रहता। (५) मित्रों और अमात्यों द्वारा तिरस्कृत होता है। (६) शादी-विवाह करने वाले—यह जुवारी

आदमी है, स्त्री का भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच, कन्या देने में आपत्ति करते हैं।

[५] गृहपति-पुत्र ! दुष्ट मित्र की मिताई के छ दोष होते हैं। (१)धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्कड़, (४) कृतघ्न, (५) वंचक और (६) गुण्डे (=साहसिक खूनी), होते हैं, वही इसके मित्र होते हैं।

[६]"गृहपति पुत्र ! आलस्य में पड़ने में यह छ दोष हैं—(१) इस समय बहुत ठंढा है' सोच काम नहीं करता। (२) 'बहुत गर्म है', (३) 'बहुत शाम हो गई है' (४) 'बहुत सवेरा है' (५) 'बहुत भूखा हूँ'। (६) 'बहुत खाया हूँ' इस प्रकार सोचकर बहुत सी करणीय बातों को न करने से उसके, अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं। भगवान् ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

(१) 'जो (मद्य-) पान में सखा होता है, सामने प्रिय बनता है, वह मित्र नहीं। जो काम हो जाने पर भी, मित्र रहता है, वही सखा है। (२) अति-निद्रा, पर-स्त्री-गमन, वैर उत्पन्न करना और अनर्थ करना। (३) बुरे की मित्रता और बहुत कजूमी, यह छ मनुष्यों को बर्बाद कर देते हैं। (४) पाप-मित्र (=बुरे मित्रवाला), पाप-सखा और पापाचार में अनुरक्त। (५) मनुष्य इस लोक और पर-लोक दोनों से ही नष्ट-भ्रष्ट होता है। (६) (जो) जूआ खेलते हैं, सुरा पीते हैं, परायी प्राण-प्यारी स्त्रियों का गमन करते हैं। (७) जो पाप सखा नीच का सेवन करते हैं, पंडित का सेवन नहीं, वह कृष्ण-पक्ष की चन्द्रमा से क्षीण होते हैं। (८) जो वारुणी (-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कड़, प्रमादी होता है। (९) जो पानी की तरह ऋण में अवगाहन करता है, वह शीघ्र ही अपने को व्याकुल करता है। (१०) दिन में निद्राशील, रात को उठने में बुरा मानने वाला। (११) सदा नशा में मस्त-शौंड गृहस्थी (=घर-आबाद) नहीं कर सकना। (१२) 'बहुत शीत है,' 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत संध्या हो गई। (१३) इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते

हैं। (१४) जो पुरुष काम करते शीत उष्ण को तृण से अधिक नहीं मानता। वह सुख से वञ्चित होनेवाला नहीं होता।

"गृहपति-पुत्र! इन चारों को मित्र के रूप में अमित्र (=शत्रु) जानना चाहिए। (१) पर-धन-हारकको मित्र-रूप में अमित्र जानना चाहिए। (२) केवल बात बनानेवाले को। (३) सदा प्रिय वचन बोलने वाले को। (४) अपाय (=हानिकर कृत्यों में सहायक को।

'(१) पर-धन-हारक होता है। (२) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय =विपत्ति) का काम करता है। (४) स्वार्थ के लिए सेवा करता है। ऐसे को भी मित्र रूप में अमित्र जानना।

"गृहपति-पुत्र! चार बातों से बची परम (=केवल बात बनानेवाले) को भी—(१) भूत कालिक वस्तु की प्रशसा करता है। (२) भविष्य की प्रशंसा करता है। (३) निरर्थक बात की प्रशसा करता है। (४) वर्तमान के काम में विपत्ति प्रदर्शन करता है।

'गृहपति-पुत्र! चार बातों से (=प्रिय वचन बोलने वाले) को भी मित्र रूपमें अमित्र समझना चाहिए कौन से '(१) बुरे काम में भी अनुमति देता है (२) अच्छे कामों में भी अनुमति देता है। (३) सामने और तारीफ(४) पीठ-पीछे निन्दा करता है तथा—

गृहपति-पुत्र! चार बातो से अपाय सहायक को मित्र रूप में अमित्र जानो—

'(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमाद के काम में फंसने में साथी होता है। (२) बेवक्त चौरस्ता घूमने में साथी होता है (३) समज्या देखने में साथी होता है। (४) जूआ खेलने जैसे प्रमाद के काम में साथी होता है।

भगवान् ने यह कहकर, फिर यह भी कहा—

पर-धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायों में सखा है॥

यह चारों अमित्र हैं, ऐसा जानकर - पंडित (पुरुष)।
खतरे-वाले रास्ते की भाँति (उन्हें) दूरसे ही छोड़ दे ॥

"गृहपति-पुत्र ! इन चार मित्रों को सुहृद जानना चाहिए—

(१) उपकारी मित्र को सुहृद् जानना चाहिए। (२) सुख-दुख को समान भोगने वाले मित्र को। (३) अर्थ की प्राप्ति के उपाय को कहने वाले मित्र को। (४) अनुकंपक मित्र को।

"गृहपति-पुत्र चार बातों से उपकारी मित्र को सुहृद् जानना चाहिए–

(१) प्रमत्त (=भूल करनेवाले) की रक्षा करता है। (२) प्रमत्त की संपत्ति की रक्षा करता है। (३) भयभीत की रक्षक (=शरण) होता है। (४) काम पड़ जाने पर, उसे दुगुना फल उत्पन्न करवाता है।

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से समान-सुख-दुःख मित्र को सहृद् जानना चाहिए —(१) इसे गुह्य (बात) बतलाता है। (२) इसकी गुह्य बात को गुह्य रखता है। (३) आपद् में इसे नहीं छोड़ता (४) इसके लिये प्राण भी देने को तैयार रहता है।

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से अर्थ-आख्यायी मित्र को सुहृद् जानना चाहिए—

(१) पाप का निवारण करता है। (२) पुण्य का प्रवेश कराता है। (३) अ-श्रुत (विद्या) को श्रुत करता है। (४) स्वर्ग का मार्ग बतलाता है।

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से अनुकंपक मित्र को सुहृद् जानना चाहिए—

(१) मित्र के (धन-संपत्ति) होने पर खुश नहीं होता। (२) न होने पर भी खुश नहीं होता। (३) मित्र की निन्दा करने वाले को रोकता है। (४) प्रशंसा करने पर प्रशंसा करता है। यह कहकर भगवान् ने फिर यह भी कहा—

'जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुःख में जो सखा बना रहता है।

हैं। (१४) जो पुरुष काम करते शीत उष्ण को तृण से अधिक नहीं मानता। वह सुख से वंचित होनेवाला नहीं होता।

"गृहपति-पुत्र! इन चारों को मित्र के रूप में अमित्र (=शत्रु) जानना चाहिए। (१) पर-धन-हारकको मित्र-रूप में अमित्र जानना चाहिए। (२) केवल बात बनानेवाले को। (३) सदा प्रिय वचन बोलने वाले को। (४) अपाय (=हानिकर कृत्यों में सहायक को।

'(१) पर-धन हारक होता है। (२) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय =विपत्ति) का काम करता है। (४) स्वार्थ के लिए सेवा करता है। ऐसे को भी मित्र रूप में अमित्र जानना।

"गृहपति-पुत्र! चार बातों से बची परम (=केवल बात बनानेवाले) को भी—(१) भूत कालिक वस्तु की प्रशसा करता है। (२) भविष्य की प्रशसा करता है। (३) निरर्थक बात की प्रशंसा करता है। (४) वर्तमान के काम में विपत्ति प्रदर्शन करता है।

'गृहपति-पुत्र! चार बातों से (=प्रिय वचन बोलने वाले) को भी मित्र रूपमें अमित्र समझना चाहिए कौन से '(१) बुरे काम में भी अनुमति देता है (२) अच्छे कामों में भी अनुमति देता है। (३) सामने और तारीफ(४) पीठ-पीछे निन्दा करता है तथा—

गृहपति-पुत्र! चार बातो से अपाय सहायक को मित्र रूप में अमित्र जानो—

'(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमाद के काम में फंसने में साथी होता है। (२) बेवक्त चौरस्ता घूमने में साथी होता है (३) समज्या देखने में साथी होता है। (४) जूआ खेलने जैसे प्रमाद के काम में साथी होता है।

भगवान् ने यह कहकर, फिर यह भी कहा—

पर-धन-हारी मित्र, और जो बचीपरम मित्र है।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायों में सखा है॥

यह चारों अमित्र हैं, ऐसा जानकर - पंडित (पुरुष)।
खतरे-वाले रास्ते की भाँति (उन्हें) दूरसे ही छोड़ दे ॥

"गृहपति-पुत्र ! इन चार मित्रों को सुहृद जानना चाहिए—

(१) उपकारी मित्र को सुहृद् जानना चाहिए। (२) सुख-दुख को समान भोगने वाले मित्र को। (३) अर्थ की प्राप्ति के उपाय को कहने वाले मित्र को। (४) अनुकंपक मित्र को।

"गृहपति-पुत्र चार बातों से उपकारी मित्र को सुहृद् जानना चाहिए—

(१) प्रमत्त (=भूल करनेवाले) की रक्षा करना है। (२) प्रमत्त की संपत्ति की रक्षा करता है। (३) भयभीत की रक्षक (=शरण) होता है। (४) काम पड़ जाने पर, उसे दुगुना फल उत्पन्न करवाता है।

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से समान-सुख-दुःख मित्र को सहृद् जानना चाहिए —(१) इसे गुह्य (बात) बतलाता है। (२) इसकी गुह्य बात को गुह्य रखता है। (३) आपद् में इसे नहीं छोड़ता (४) इसके लिये प्राण भी देने को तैयार रहता है।

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से अर्थ-आख्यायी मित्र को सुहृद् जानना चाहिए—

(१) पाप का निवारण करता है। (२) पुण्य का प्रवेश कराता है। (३) अ-श्रुत (विद्या) को श्रुत करता है। (४) स्वर्ग का मार्ग बतलाता है।

"गृहपति-पुत्र ! चार बातों से अनुकंपक मित्र को सुहृद् जानना चाहिए—

(१) मित्र के (धन-संपत्ति) होने पर खुश नहीं होता। (२) न होने पर भी खुश नहीं होता। (३) मित्र की निन्दा करने वाले को रोकता है। (४) प्रशंसा करने पर प्रशंसा करता है। यह कहकर भगवान् ने फिर यह भी कहा—

'जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुःख में जो सखा बना रहता है।

जो मित्र अर्थ-आख्यायी होता है और जो मित्र अनुकंपक होता है।
यही चार मित्र हैं, बुद्धिमान् ऐसा जानकर।
सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्र की भाँति उनकी सेवा करे।
सदाचारी पडित मधुमक्खी की भाँति भोगों को संचय करते।
प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रकाशमान होता है॥
(उसको) भोग (=संपत्ति) जैसे वल्मीकि बढता है, वैसे बढते हैं।

इस प्रकार भोगों का संचय कर अर्थ संपन्न कुलवाला जो गृहस्थ।
चार भाग में भोगों को विभाजित करे, वही मित्रों को पावेगा।
एक भाग को स्वयं भोगे, दो भागों को काम में लगावे।
चौथे भाग को आपत्काल में काम आने के लिये रख छोडे।

गृहपति-पुत्र! यह दिशायें जाननी चाहियें। माता-पिता को पूर्व-दिशा जानना चाहिये, आचार्यों को दक्षिण-दिशा, पुत्र-स्त्री को पश्चिम-दिशा। मित्र-अमात्यों को उत्तर-दिशा। दास-कर्मकरको नीचे की दिशा। श्रमण-ब्राह्मणों को ऊपर की दशा जाननी चाहिये।

गृहपति-पुत्र! पाँच तरह से माता-पिता का प्रत्युपस्थापन (= सेवा) करना चाहिये। (१) (इन्होंने मेरा) भरण-पोषण किया है, अत मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये। (२) (मेरा काम किया है, अत) इनका काम मुझे करना चाहिये। (३) (इन्होंने कुल-वश कायम रक्खा, अतः मुझे कुल-वंश कायम रखना चाहिये। (४) इन्होंने मुझे दायज्ज (= विरासत) दिया, अत मुझे दायज्ज प्रतिपादन करना चाहिये। मृतों का स्मरण रखना चाहिए इन पाँच तरह से सेवित (माता-पिता) पुत्र पर पाँच प्रकार से अनुकपा करते हैं—(१) पाप से निवारण करते हैं। (२) पुण्य में लगाते हैं। (३) शिल्प सिखलाते हैं। (४) योग्य स्त्री से सबंध कराते हैं। (५) समय पाकर दायज्ज निष्पादन करते हैं। गृहपति-पुत्र! इन पाँच बातों से पुत्र द्वारा माता-पिता-रूपी पूर्वदिशा प्रत्युपस्-

स्थान की जाती है।……इस प्रकार इस (पुत्र) की पूर्व दिशा प्रतिच्छन्न (=ढंकी, रक्षायुक्त) क्षेम-युक्त, भय रहित होती है।

गृहपति-पुत्र! पाँच बातों से शिष्य द्वारा आचार्य-रूपी दक्षिण-दिशा प्रत्युपस्थान (=उपासना) की जाती है। (१) उत्थान (= तत्परता) से, (२) उपस्थान (=हाजिरी =सेवा) से, (३) सुश्रूषा से, (४) परिचर्या=सत्संग से, सत्कार-पूर्वक शिल्प सीखने से।

गृहपति-पुत्र! इस प्रकार पाँच बातों से शिष्य द्वारा आचार्य सेवित हो, पाँच प्रकार से शिष्य पर अनुकपा करते हैं—(१) सु-विनय से युक्त करते हैं। (२) सुन्दर शिक्षा को भली-प्रकार सिखलाते हैं। (३) 'हमारी (विद्या) परिपूर्ण रहेंगी' सोच सभी शिल्प सभी श्रुत (=विद्या) को सिखलाते हैं। (४) मित्र-आमात्यों को सुप्रतिपादन करते हैं। (५) दिशा की सुरक्षा करते हैं।

गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकार से स्वामि-द्वारा भार्या-रूपी पश्चिम-दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) सम्मान से, (२) अपमान न करने से, (३) अतिचार (पर-स्त्री गमन आदि) न करनेसे, (४) ऐश्वर्य-प्रदान से, (५) अलकार-प्रदान से। गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारों से स्वामि द्वारा भार्या रूपी पश्चिम-दिशाकी प्रत्युपस्थान की जाने पर, स्वामि पर भार्या पाँच प्रकार से अनुकपा करती है—(१) कर्मान्त (=काम-काज) भली प्रकार करती हैं। (२) परिजन (= नौकर-चाकर) वश में रखती हैं। (३) स्वयं अतिचारिणी नहीं होती। (४) अर्जित की रक्षा करती है। (५) सब कामों में निरालस्य और दक्ष होती है।

गृहपति पुत्र! पाँच प्रकार से मित्र-अमात्य-रूपी उत्तर-दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) दान से, (२) प्रिय-वचन से, (३) अर्थ-चर्या (=काम कर देने) से, (४) समानता (प्रदर्शन) से, (५) विश्वास-प्रदान से। गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान की गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर-दिशा, पाँच प्रकार से उस कुल-पुत्र पर अनुकपा करती है—(१) प्रमाद (=भूलें, आलस्य) कर देने

पर रक्षा करते हैं। (२) प्रमत्त की संपत्तिकी रक्षा करते हैं। (३) भयभीत होनेपर शरण (=रक्षक) होते हैं! (४) आपत्काल में नहीं छोड़ते। (५) दूसरी प्रजा (=लोग) भी (ऐसे मित्र-आमत्य-वाले, इस पुरुष का सत्कार करती है।

गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकारों से आर्यक (=मालिक) द्वारा कर्मकर रूपी निचली-दिशा का प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) बलके अनुसार कर्मान्त (=काम) देने से, (२) भोजन-वेतन (भत्त-वेतन) प्रदान से, (३) रोगी-सुश्रूषा से, (४) उत्तम रसों (वाले पदार्थों) को प्रदान करने से, (५) समय पर छुट्टी (=वोसग्ग) देने से गृहपति-पुत्र! इन पाँचों प्रकारों से— प्रत्युपस्थान किये जाने पर दास-कर्मकर पाँच प्रकार से मालिक पर अनुकंपा करते हैं—(१) (मालिक से) पहिले कर्तव्य कर्म को करने वाले होते हैं। (२) (३) दिये को (ही) लेने वाले होते हैं। (४) कामों को अच्छी तरह करनेवाले होते हैं। (५) कीर्ति-प्रशंसा फैलानेवाले होते हैं।

गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकार से कुल-पुत्रको श्रमण-ब्राह्मण-रूपी ऊपर की दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्म से, (२) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक कर्म से, (३) मानसिक-कर्म से, (४) (याचकों-भिक्षुओं के लिये) खुले द्वार वाला होने से, (५) आमिष (खान-पान आदि की वस्तु) के प्रदान करने से गृहपति-पुत्र अनुकपा करते हैं—(१) पाप (बुराई) से निवारण करते हैं। (२) कल्याण (=भलाई में प्रवेश कराते हैं। (३) कल्याण (-प्रदान)-द्वारा इनपर अनुकंपा करते हैं। (४) अ-श्रुत (विद्या) को सुनाते हैं। (५) श्रुत (विद्या) को दृढ़ करते हैं। (६) उन्नति का रास्ता बतलाते हैं।

यह उपदेश सुन उस सिगाल गृहपति-पुत्रने भगवान् को यह नुदान वाक्य कह दीक्षित हुआ कि "आश्चर्य! अद्भुत भन्ते! आज से मुझे भगवान अपना अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

भगवान् के जीवन के अंतिम तीन मास

चापल चैत्य में आनन्द को उद्बोधन

एक दिन सवेरे भगवान् चीवर वेष्टिक हो भिक्षा-पात्र हाथ में ले भिक्षा करने के लिए वैशाली नगर में गये। भिक्षा ग्रहण करके वहाँ से लौटने पर भोजनादि से निवृत्त हो आनन्द से बोले—'हे आनन्द ! हमारा आसन लेकर चापल चैत्य में चलो, आज हम वहीं दिवा-विहार करेंगे।" आज्ञानुसार आसन ले आनद भगवान् के पीछे पीछे चापाल चैत्य में गये और वहा जाकर आसन विछा दिया। भगवान उस पर विराजमान हुए। आनन्द भी भगवान् को अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। उस समय भगवान आनद को सम्बोधन कर बोले—हे आनन्द ! यह वैशाली अति रमणीय स्थान है। यहाँ पर उदेय-चैत्य, गौतम-मंदिर, सप्त-मंदिर, सारंदद मंदिर, चापल चैत्य-मदिर इत्यादि सब पवित्र स्थान अत्यन्त मनोहर और रमणीय है तथागत चाहे तो अपना आयुप दीर्घ करले सकते हैं।"

भगवान का आयु-संस्कार-त्याग

इस प्रकार भगवान् बुद्ध के चापल चैत्य-मंदिर में स्मृतिवान् और संप्रजात-अवस्था में शेप आयु-संस्कार का त्याग किया।

यह घटना माघ शुक्ल पूर्णिमा की है। उसके ठीक तीन महीने बाद वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को, भगवान् परिनिर्माण मे च ने गये।

"हे आनन्द ! विमुक्ति अर्थात् बाहरी वस्तुओं को इन्द्रियों के ग्रहण और चिंता करने से ध्यान में जो व्याघात उत्पन्न होना है उस व्याघात से विमुक्ति का होना आवश्यक है। उस विमुक्ति के आठ सोपान हैं—(१) मन में रूप (वस्तुओं) का भाव विद्यमान है और

वाहरी जगत् मे भी रूप (वस्तुएँ) दिखाई पड़ते है यह विमुक्ति का प्रथम सोपान है (२) मन में रूप का भाव विद्यमान नहीं है परतु वाहरी जगत् में रूप दिखाई पड़ता है यह विमुक्ति का दूसरा सोपान है, (३) मन में रूप का भाव विद्यमान है परतु वाहरी जगत् में रूप दिखाई नहीं पड़ता यह विमुक्ति का तीसरा सोपान है, (४) रूप जगत् को अतिक्रमण करके आकाश अनत इस प्रकार भावना करते-करते **आकाशानंत्यायतन** में विहार करना यह विमुक्ति का चौथा सोपान है, (५) आकाशानंत्यायतन को अतिक्रमण करके विज्ञान अनत इस प्रकार भावना करते-करते **विज्ञानानंत्यायतन** में विहार करना यह विमुक्ति का पाँचवाँ सोपान है, (६) विज्ञानानंत्या-यतन को अतिक्रमण करके अकिंतन अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार की भावना करते-करते **अकिंचान्यायतन** में विहार करना यह विमुक्ति का छठा सोपान है, (७) अकिंचन्यायतन को अतिक्रमण करके ज्ञान भी नहीं है अज्ञान भी नहीं है इस प्रकार भावना करते-करते **नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन** में विहार करना यह विमुक्ति का सातवाँ सोपान है;(८) नैवसज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण करके ज्ञान और ज्ञाता दोनों के निरोध द्वारा **संज्ञायित्वेदनिरोध** उपलब्ध करना यह विमुक्ति का छठवाँ और अंतिम सोपान है।

आनन्द को महापरिनिर्वाण की सूचना

इन सव वातों क वर्णन कर चुकने के वाद भगवान् ने कहा—हे आनद ! सम्वोधि लाभ करने के कुछ काल वाद एक वार हम उरु विल्व ग्राम में निरजना नदी के तट पर अजपाल नामक न्यग्रोध (वट) के नीचे वैठे थे। प्रचार का विचार किया तो निश्चय किया कि जव तव हमारे भिक्षु-भिक्षुणी उपासक-उपासिका लोग सच्चे श्रावक-श्राविका न हो जायँगे, जब तक वे स्वयं ज्ञानी विनीत, वहु शास्त्रज्ञ, यथार्थ धर्म-वेत्ता विशेष और साधारण धर्मानुष्टानकारी विशुद्ध जीवन प्राप्त

करके दूसरों को भी समझदार उपदेश प्रदान न कर सकेंगे; जब तक सत्य का यथार्थ रूप से वर्णन और उसका विस्तार नहीं कर सकेंगे और जब तक वे मिथ्या प्रवाद-धर्म के उपस्थित होने पर उसको सत्य के द्वारा प्रदर्शित करने में समर्थ नहीं होंगे तब तक हम अस्तित्व से नहीं जायँगे। आज यह सत्य, प्रभावशाली एव वर्धनशील धर्म विस्तृत तथा जन-साधारण के निकट प्रकाशित हो गया है। सो अब तथागत बहुत जल्द परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। आज से तीन महीने के बाद तथागत अस्तित्व से चले जायँगे।' अतएव "हे आनन्द! आज इस चापाल-मंदिर में तथागत ने स्मृतिवान् और संप्रज्ञात-अवस्था में ही अपने आयु-संस्कार का परित्याग किया है।"

आनन्द की प्रार्थना

भगवान् की यह बात सुनकर आनन्द स्तब्ध रह गये। उनका मुख-मंडल कुम्हला गया। वे अवाक् से हो गये। फिर कुछ देर बाद धीरज धरकर भगवान् से बोले—"भगवन्! अनुकम्पापूर्वक सबके हित और सबके सुख के लिए आप एक कल्प तक और उपस्थिति कीजिये।" भगवान् ने आनन्द की इस प्रकार की कातरोक्ति सुनकर कहा—"हे आनन्द! तथागत से अब इस प्रकार की प्रार्थना मत करो, अब तथागत से इस प्रकार की बात करने का समय नहीं है।"

फिर बोले—हे आनन्द! क्या तुम तथागत के बोधिसत्व पर विश्वास नहीं करते हो?

आनन्द ने कहा—"भगवान्! मैं तो तथागत के बोधि पर विश्वास करता हूँ।" तब भगवान् बोले—"फिर तुम इस प्रकार लगातार प्रार्थना करके तथागत को क्यों पीड़ित कर रहे हो?"

हे आनन्द! हमने पहले ही तुमको सचेत कर दिया है कि हम लोग सब मनोहर और प्रिय वस्तुओं से अलग होंगे। हमारा इन सबसे संपर्क छूट जायगा। हमारा इन सबसे विरुद्ध संपर्क

(सबध) हो जायगा। जितनी उत्पन्न वस्तुएँ हैं वे सब क्षणभंगुर हैं। तब यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है कि देहधारी मनुष्य का शरीर विनष्ट न हो? हे आनन्द! तथागत ने इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया है, इसे अग्राह्य किया है और प्रतिशेष किया है। तथागत ने अब अपने अवशिष्ट आयुकाल का परित्याग किया है। जब तथागत द्वारा यह बात कही जा चुकी है कि 'तथागत बहुत जल्द आज से तीन महीने बाद, परिनिर्वाण में जायँगे', तो अब तथागत जीने की इच्छा से फिर उस कही हुई बात का प्रत्याहार करेंगे, यह कभी संभव नहीं है। आनन्द! अब तुम इसकी कुछ चिन्ता न करो। चलो, अब हम लोग महावन की कूटागार-शाला में चलें।

सैंतीस बोधिपाक्षीय धर्म

इसके बाद भगवान् आनन्द को साथ ले महावन की कूटागार-शाला में आये और आनन्द से बोले—"हे आनन्द! वैशाली के निकट चारों ओर जो भिक्षु लोग वास करते हैं, उन्हें बुलाकर यहाँ उपस्थान-शाला में एकत्रित करो।"

आनन्द ने भगवान् की आज्ञानुसार सब भिक्षुओं को बुलाकर एकत्रित किया। तब भगवान् उपस्थान-शाला में निर्दिष्ट आसन पर विराजमान हुए और भिक्षु संघ को सम्बोधन करके बोले—"हे भिक्षुओ! हमने जिस धर्म को ज्ञात करके तुम लोगों को उपदेश किया है, तुम लोग उस धर्म को उत्तम रूप से आयत्त करके उसका पूर्ण-रूप से आचरण करो, उसकी गम्भीर चिन्ता करो और उनका सब जगह सबमें विस्तार करो, जिससे यह धर्म स्थायी रूप से चिरकाल तक विद्यमान रहे और तुम लोग करुणा से प्रेरित होकर इस अभिप्राय से धर्म का प्रचार करो, जिसमें सबका हित सबको सुख तथा देवता और मनुष्यों का कल्याण हो।"

"हे भिक्षुओ! वह कौन-सा धर्म है? वह यही धर्म है जिसे

हमने तुम लोगों को सिखाया है। यह सैंतीस बोधि-पक्षीय धर्म है। उस धर्म का फिर मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। सुनो! चार स्मृत्युपस्थान चार सम्यक् प्रहाण, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पांच बल, सात संबोध्यंग और आठ श्रेष्ठ मार्ग अर्थात् आर्याष्टांगिक मार्ग। ये सब मिलकर 'सैंतीस बोधि-पक्षीय धर्म' है।

भिक्षुओ! (१) कायानुदर्शन स्मृत्युपस्थान अर्थात् शरीर अपवित्र है; (२) वेदनानुदर्शन स्मृतियुपस्थान अर्थात् वेदनाएं (इन्द्रिय द्वारा बाह्य वस्तुओं का ग्रहण) सब दुःखमय है; (३) चित्तानुदर्शन स्मृतियुपस्थान अर्थात् चित्त चंचल है और (४) धर्मानुदर्शन स्मृतियुपस्थान अर्थात् संसार की यावत् वस्तुएँ हैं। सब अस्थिर हैं। ये चार स्मृत्युपस्थान हैं।

भिक्षुओ! (१) अनुत्पन्न पुण्य-कर्मों का उत्पन्न करना, (२) उत्पन्न पुण्य कर्मों की वृद्धि और संरक्षण करना, (३) उत्पन्न पाप कर्मों का नाश करना और (४) अनुत्पन्न पाप कर्मों को न उत्पन्न होने देना। ये चार सम्यक् प्रहाण हैं।

भिक्षुओ! (१) छंद-ऋषि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने की अभिलाषा वा दृढ संकल्प, (२) वीर्य-ऋद्धि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने का उद्योग, (३) चित्त-ऋद्धि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने का उत्साह, और (४) मीमांसा-ऋद्धि अर्थात् असामान्य अलौकिक क्षमता प्राप्त करने का अन्वेषण। ये चार ऋद्धि-पाद हैं।

भिक्षुओ! (१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि, और (५) प्रज्ञा। ये पाँच इन्द्रियाँ हैं और ये ही ५ बल हैं।

भिक्षुओ! (१) स्मृति, (२) धर्म, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि (प्रशांति), (६) समाधि और (७) उपेक्षा ये सात संबोध्यंग हैं।

भिक्षुओ! (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प,

(३) सम्यक् व्यायाम, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, और (८) सम्यक् समाधि। ये आर्याष्टांगिक अर्थात् आठ श्रेष्ठ मार्ग हैं।

हे भिक्षुओं ! इन्हीं सैंतीस तत्वों को लेकर हमने धर्म की व्यवस्था की है। तुम लोग इस धर्म को सम्यक् रूप से धारण करो, इसकी चिंता करो और आलोचना करो तथा सबके हित एवं सुख के लिए उनपर अनुकम्पा करके इसका विस्तार करो। हे भिक्षुओ ! सावधान हो चित लगाकर हमारी बात सुनों। संसार की सब उत्पन्न यावत् वस्तुएँ हैं, वे वयो-धर्म (काल-धर्म) के अधीन हैं। अतएव तुम लोग सचेत होकर निर्वाण का साधन करो। अब बहुत शीघ्र तथागत निर्वाण को प्राप्त होंगे। आज से तीन मास बाद तथागत भी निर्वाण में जायेंगे।

इसके बाद भगवान् ने निम्नलिखित गाथा का उद्गान किया—

परिपक्को वयो मह्यं परित्तं मम जीवितं।
पहाय वो गमिस्सामि कत मे सरणं मत्तमो॥
अप्पमत्ता सतिमत्तो सुसीला होथ भिक्खवो।
सुसमाहित सकप्पा सचित्तं अनुरक्खथ॥
यो इमस्मि धम्मविनये अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसार दुक्ख सस्सत करिस्सति॥

अर्थ—अब हमारी आयु परिपक्व हो चुकी है। अब हमारे जीवन के थोडे ही दिन शेष रह गये हैं। अब मैं सब छोड़कर चला जाऊँगा। मैंने स्वय अपने को अपना आश्रय बनाया है अर्थात् मैं स्वयं अपने वास्तविक रूप में स्थित हो गया हूँ। हे भिक्षुओं ! अब तुम लोग प्रमाद-रहित, समाहित, सुशील और स्थिर-सकल्प होकर अपने चित्त का पर्यवेक्षण करो। जो भिक्षु प्रमाद-रहित होकर हमारे इस धर्म में विहार करेंगे, वह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का समूल उच्छेद करके दुःख का अत्यन्त निरोध कर सकेंगे।

भंडग्राम में

इस प्रकार महावन की कूटागार शाला मे भिक्षु-संघ को उपदेश प्रदान करने के बाद एक दिन सवेरे चीवर-वेष्टित तथा भिक्षा पात्र हाथ में लिए भिक्षा करके वैशाली से लौटते समय भगवान् ने गज-दृष्टि से वैशाली नगर को देखा और देखने के बाद आनन्द से कहा—"हे आनन्द । तथागत का वैशाली नगर पर यह अंतिम दृष्टिपात करना है । अब चलो, हम लोग भडग्राम चलें ।"

इसके बाद भगवान् बहुनसख्यक भिक्षुओं के साथ भडग्राम में आकर विराजमान हुए । इस स्थान पर अवस्थिति-काल में भगवान् भिक्षु-सघ को संबोधन करके बोले—"भिक्षुओं । चार धर्म के न जानने और आयत्त न करने अर्थात् अमल में न लाने से हम सब लोगों का बार-बार जन्म मृत्यु के चक्र में आना पड़ता है । वह चार धर्म कौन से हैं ? सुनो । (१) सम्यक् शील अर्थात् श्रेष्ठ चरित्र, (२) सम्यक् समाधि श्रेष्ठ गभीर ध्यान, (३) सम्यक् प्रज्ञा अर्थात् श्रेष्ठतत्त्व-ज्ञान और (४) सम्यक् विमुक्ति अर्थात् वास्तविक स्वाधीन अवस्था । जब सम्यक् शील ज्ञात और आयत्त हो जाता है तब उससे सम्यक् समाधि, ज्ञात होती है और जब सम्यक् समाधि ज्ञात और आयत्त हो जाती है, तब उससे सम्यक् प्रज्ञा ज्ञात होती है और जब सम्यक् प्रज्ञा ज्ञात हो जाती है तब उससे सम्यक् विमुक्ति ज्ञात होती है और इसी प्रकार सम्यक विमुक्त के ज्ञात हो जाने से अस्तित्व अर्थात् अहभाव की तृष्णा बुझ जाती है । उस समय पुनर्जन्म का कारण विनष्ट हो जाता है और मनुष्य बार-बार के जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है ।"

इस भंडग्राम की अवस्थिति-काल में भगवान् भिक्षु-सघ को शील, समाधि, प्रज्ञा के विषय में निरतर उपदेश देते रहे । एक दिन भिक्षुओं को संबोधन करके भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ ! शील के द्वारा

परिशोभित समाधि में महाफल और महालाभ होता है। समाधि के द्वारा परिशभित प्रज्ञा में महाफल और महालाभ होता है। प्रज्ञा के द्वारा परिशोभित चित्त सब प्रकार के दुःखों से अत्यन्त विमुक्ति लाभ करता है। वे दुःख आस्रव चार प्रकार के हैं—"कामना, अस्मिता, मिथ्या दृष्टि और अविद्या।"

भिक्षुसंघ को चार शिक्षाएँ

इस प्रकार भडग्राम में उपदेश का कार्य समाप्त करके वहा से भिक्षु-सघ-समेत भगवान् हस्तिग्राम, हस्तिग्राम से आम्रग्राम और आम्रग्राम से जबुग्राम में पधारते और धर्म प्रचार करते हुए भोगनगर में आए और यहाँ **आनन्द-चैत्य मंदिरमें** विराजमान हुए। यहाँ विहार करते हुए एक दिन भिक्षुसंघ को सबोधन करके बोले—"हे भिक्षुगण! तुम लोगों को मैं चार बड़ी देशनाएं देता हूँ। सावधान होकर सुनो और इनको अच्छी तरह से मन में धारण करो।"

(१) हमारे बाद यदि कोई भिक्षु धर्म की कोई बात लेकर इस प्रकार कहे कि हमने ऐसा स्वयं भगवान् के मुख से सुना और ग्रहण किया है कि धर्म इस प्रकार का है, विनय इस प्रकार है, शास्ता बुद्ध का शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी यह बात सुनकर न तो सहसा मान लेना और न उसकी अवहेलना ही करना। उसकी इस प्रकार की बात का आदर-अनादर कुछ न करके उसके वाक्य के प्रत्येक पद और अक्षरों को सावधानता-पूर्वक सुनकर मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ तुलना करके देखना। यदि वह सूत्र और विनय के सग न मिले, तो यह समझना कि उसकी बात शास्ता कथित नहीं है; इस भिक्षु ने शास्ता की बात को सुन्दर रूप से ग्रहण नहीं किया है। अत इसकी बात ग्रहणीय नहीं है और यदि उसकी बात सूत्र और विनय से मिल जाय तो यह समझना कि यह बात शास्ता कथित है

और इस भिक्षु ने उसको सुन्दर रूप से ग्रहण किया है । हे भिक्षुओं ! यह मेरी पहली चेतावनी है ।

(२) यदि कोई भिक्षु धर्म की कोई बात लेकर इस प्रकार कहे कि हमने अमुक जगह भिक्षु-संघ से इस बात को स्वयं सुना है और अच्छी तरह से समझा है कि भगवान् बुद्ध का धर्म इस प्रकार है, विनय (भिक्षुओं के व्यवहार के नियम) इस प्रकार है, शास्ता बुद्ध का शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी बात का आदर-अनादर कुछ भी न करके उस बात को सावधानता-पूर्वक सुनकर सूत्र और विनय के साथ तुलना करके देखना । यदि मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ वह मिले तो उस बात को ग्रहण करना और यदि न मिले तो न ग्रहण करना ! भिक्षुओं ! यह मेरी दूसरी चेतावनी है ।

(३) यदि कोई भिक्षु धर्म की बात लेकर इस प्रकार कहे कि अमुक स्थान पर कई एक भिक्षु विहार करते है, वे बहुत सुयोग्य हैं, उन्होंने हमसे इस प्रकार कहा हैं कि शास्ता बुद्ध का धर्म, विनय और शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी बात का आदर-अनादर कुछ न करके सावधानता-पूर्वक सुनकर सूत्र और विनय के साथ उसकी तुलना करके देखना । यदि वह मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ मिले, तो ग्रहण करना और न मिले, तो न ग्रहण करना । भिक्षुओ ! यह मेरी तीसरी चेतावनी ।

(४) यदि कोई भिक्षु धर्म की बात लेकर इस प्रकार कहे कि अमुक जगह में एक स्थविर रहते हैं, वह बहुशास्त्रज्ञ, विनयधर और परंपरागत पूर्ण धर्मज्ञ हैं, उन्होंने हमसे इस प्रकार कहा है कि बुद्ध का धर्म, विनय और शासन इस प्रकार है, तो तुम उसकी बात का आदर-अनादर कुछ न करके, सावधानता-पूर्वक सुनकर मेरे कहे हुए सूत्र और विनय के साथ तुलना कर के देखना । यदि वह सूत्र और विनय के साथ मिले तो ग्रहण करना और न मिले तो न ग्रहण करना । भिक्षुओ। यह मेरी चौथी चेतावनी है ।

अंतिम भोजन

भोगनगर की अवस्थिति-काल में भगवान् बहुसंख्यक भिक्षु संघ को शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति की निरन्तर शिक्षा देते रहे। यहाँ उपदेश का कार्य क्रम समाप्त करके भगवान् ने भिक्षु संघ समेत पावा नगर की ओर गमन किया और पावा में पहुँचकर भगवान् चुन्द स्वर्णकार के आम्रवन में विराजमान हुए।

जब चुन्द ने सुना कि भगवान् बुद्ध अपने भिक्षु-संघ-समेत पावा में आकर हमारे आम्रवन में ठहरे हैं, तो वह मारे आनन्द के मग्न हो गया और अपना अहोभाग्य समझकर भगवान् के पास आया तथा अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। परम कारुणिक भगवान् ने चुन्द स्वर्णकार को अपने उपदेशामृत द्वारा उद्बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनंदित किया। भगवान् का उपदेश सुनकर कृतकृत्य हो चुन्द ने भगवान् से विनय की कि 'भगवान्! कृपा करके कल आप अपने भिक्षु संघ समेत मेरे यहाँ पधारकर भोजन कीजिए।" भगवान् ने मौन-भाव द्वारा अपनी स्वीकृति प्रकाश की। चुन्द भगवान् की स्वीकृति पा प्रणाम और प्रदक्षिणा करके घर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान् चीवर-वेष्टित हो भिक्षा पात्र हाथ में लेकर भिक्षु संघ समेत चुन्द के घर पधारे। चुन्द ने भगवान् को संघ-समेत आदर सहित आसन पर बिठाकर नाना भाँति के भोज्य पदार्थ और शूकर-मद्दव, जो उसने तैयार किया था, परसना आरंभ किया। तब भगवान् बोले—"हे चुन्द! तुमने जो शूकर-मद्दव तैयार किया है, वह केवल हमी को परसना और दूसरे सब प्रकार के व्यंजन भिक्षुओं को परसना! चुन्द स्वर्णकार ने भगवान् की आज्ञानुसार ऐसा ही किया। भोजन समाप्त होने पर भगवान् ने चुन्द को संबोधन करके कहा—"चुन्द! यह बचा हुआ शूकर-मद्दव एक गढा खोदकर उसमें गाड़ दो।" आज्ञा पालनकर चुन्द भगवान् के निकट आ अभिवा-

न्दन करके एक ओर बैठ गया। तब भगवान् ने अपने धर्मोपदेश द्वारा चुन्द को उद्‌बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनन्दित करके उसके घर से प्रस्थान किया।

कुशीनगर के मार्ग में

इसके बाद से ही भगवान् रक्त और आँव के रोग से बहुत पीड़ित हो गये। परन्तु इस अत्यन्त कठिन पीड़ा के उपस्थित होने पर भी भगवान् स्मृति-संप्रजन्य हो वेदना को अग्राह्य करते रहे और 'घबराने की कोई बात नहीं" कह आश्वासन दे आनन्द को संबोधन करके कहा—"आनन्द! चलो, हम लोग कुशीनगर की ओर चलें।" ऐसा कह आनन्द को साथ लिए हुए भगवान् कुशीनगर की ओर गये। थोड़ी दूर चलने के बाद भगवान् रास्ते से हटकर एक स्थान पर एक वृक्ष के नीचे गये और आनन्द को संबोधित करके कहा—"आनन्द! संघाटी को चार-दोहरा करके इस जगह बिछा दो। हम थक गये हैं, विश्राम करेंगे।" आनन्द ने भगवान् की आज्ञानुसार चीवर बिछा दिया। भगवान् उस पर बैठ गये और बोले—"हे आनन्द! हमारे लिए पानी ले आओ, हमको प्यास लगी है।"

भगवान् की यह बात सुनकर आनन्द ने कहा—"भगवान्! यहाँ जो जल मिलेगा, उस जल पर होकर अभी-अभी पाँच सौ गाड़ियाँ निकल गई हैं अत इसका जल उनके पहियों द्वारा गँदला और मैला हो गया है। यहाँ से थोड़ी दूर पर जो ककुत्था नदी है, उसका पानी सुखद, शीतल और स्वच्छ है, उसके उतरने का घाट भी सुगम और मनोहर है। इसलिये वहीं पर भगवान् जल-पान करके शरीर शीतल करें।" भगवान् ने फिर कहा—"हमको प्यास लगी है। जल ले आओ।" आनन्द ने फिर उसी गँदले पानी की बात कही भगवान् ने फिर जल लाने के लिये अनुरोध किया। विवश होकर आनन्द पात्र ले उसी गँदले पानी को लेने के लिए उस क्षुद्र नदिका की जलाशय

के पास गये। आनन्द के जाते समय वह जल-स्रोत पंक-रहित, स्वच्छ और निर्मल होकर प्रवाहित हो रहा था। आनन्द यह देखकर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए और भगवान् तथागत की अद्भुत महिमा का अनुभव करके चित्त में बड़े आह्लादित हो महिमा का गुण गान करते हुए पात्र में जल लेकर भगवान् के पास आये और कहने लगे— भगवन! जल लाया हूँ। पान कीजिये। भगवान ने जल-पान करके थोड़ी देर वहीं विश्राम किया।

मल्ल युवक पुक्कुस

इसी समय आचार्य आलार कालाम का एक शिष्य, जिसका नाम पुक्कुस था, कुशीनगर से पावा को जा रहा था। पुक्कुस मल्ल-देशीय युवक था और भगवान को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखकर उनके निकट गया और भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। फिर भगवान को संबोधन करके बोला—"आश्चर्य है भन्ते! जिन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की है, वे लोग किस आश्चर्य और किस अद्भुत शांति के साथ विहार करते हैं। एक समय हमारे गुरु आलार कालाम एक वृक्ष के नीचे बैठ कर तपस्या करते थे, उसी समय पाँच सौ शकट उनके शरीर को स्पर्श करते हुए निकल गये। परन्तु उन्होंने न उनको देखा और न उन पाँच सौ शकटों की आवाज ही सुनी।

भगवान की यह अवस्था देखकर मल्ल-युवक पुक्कुस भगवान के चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा—"हे भगवान! आपने कृपा करके हमारी आँख खोल दी। आपके दर्शन मात्र से ही हमको सत्य की झलक दिखाई पड़ गई। आज से हम बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करते हैं। अब आप हमको अपने उपासकों में ग्रहण कीजिये। हम मरण-पर्यन्त आपकी ही शरण में रहेंगे।

इसके बाद पुक्कुस भगवान को पहनने योग्य दो बहुमूल्य सुनहले वस्त्र अर्पण करके बोला—"भगवान! हम पर अनुग्रह करके यह

युगल वस्त्र ग्रहण कीजिये। भगवान् बोले—"अच्छा, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो एक वस्त्र हमको ओढ़ा दो और एक आनन्द को दे दो। भगवान् के आज्ञानुसार पुक्कुस ने एक वस्त्र भगवान् को ओढा दिया और दूसरा आनन्द को दे दिया।

इसके वाद भगवान ने मल्ल देशीय युवक पुक्कुस को अपने धर्म-उपदेश के द्वारा उद्बोधित, उत्साहित, अनुरक्त और आनदित किया। भगवान् के धर्मोपदेश को ग्रहण करके पुक्कुस भगवान् को प्रणाम और प्रदक्षिणा करके चला गया।

पुक्कुस के सुनहले वस्त्रों की क्षीण आभा

पुक्कुस के चले जाने के वाद आनन्द उन दोनों सुनहले वस्त्रों को भगवान् को अच्छी तरह ओढ़ा दिया। भगवान् के शरीर पर ओढाए जाने के वाद वे दोनों चमकीले सुनहले वस्त्र हीनप्रभ दिखलाई पड़ने लगे। इस वात को देखकर आनन्द वड़े कतूहल में आकर वोले—"भगवान्! इस समय आपके शरीर का वर्ण कैसा अद्भुत, आश्चर्यमय, परिशुद्ध और उज्ज्वल है कि ये अत्यंत चमकीले और सुनहले वस्त्र भी आपके शरीर पर पड़ते ही निस्तेज और हीनप्रभ (चमक-रहित) हो गए। आनन्द की वात सुन भगवान् वोले -"ऐसा ही है आनन्द! दो समयों में तथागत के शरीर का वर्ण अत्यंत परिशुद्ध और उज्ज्वल होता है—(१) जिस रात्रि में तथागत **अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि लाभ** करते हैं और (२) जिस रात्रि मे तथागत **निरुपधिशेष** (आवागमन के कारण रहित) **निर्वाण** में जाते हैं। आनन्द! आज रत्रि के पिछले प्रहर में **कुशीनगर उपवन** अर्थात् मल्लों के शालवन में दो **यमक शालवृक्षो** के वीच में तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ आनन्द! जहा ककुत्था नदी है वहा चलें।

ककुत्था नदी में

इसके बाद भगवान् बहुसंख्यक भिक्षुओं के संघ के साथ ककुत्था नदी के किनारे पहुँचे और नदी में स्नान करके जल-पान किया तथा नदी पार करके चुन्द के आम्रवन में पहुँचकर चुन्द से बोले—"चुन्द ! चीवर को चौपर्ता करके यहाँ बिछा दो, हम क्लात हो गए हैं, विश्राम करेंगे।" भगवान् की आज्ञानुसार चुन्द ने चीवर को चार पर्त करके बिछा दिया, भगवान् ने दक्षिण पार्श्वसे सिंह-शयन की तरह एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखकर शयन किया और स्मृतिवान एवं संप्रज्ञात-भाव से विराजमान रहे तथा यथा समय उठने की इच्छा की। चुन्द भी जो अब तक भगवान् के साथ था, उन्हीं के पास बैठा था। भगवान् ने उठकर आनंद को संबोधन करके कहा—"आनंद ! शायद कोई चुन्द कुर्मारपुत्र को चिन्तित करें कि आवुस चुन्द ! अलाभ हुआ है तुझे, तूने दुर्लाभ कमाया जो कि 'हे चुन्द ! तुम्हारा ही अन्न खाकर तथागत ने शरीर त्याग किया' तो आनद ! चुन्द के मन की चिन्ता और अनुताप को यह कहकर निवारण करना कि 'हे चुन्द ! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुमने महान् पुण्य लाभ किया जो तुम्हारा भोजन ग्रहण करके तथागत ने परिनिर्वाण लाभ किया। तथागत को जितने भोजनदान मिले हैं, उनमें दो अत्यन्त फलप्रद हैं, एक सुजाता का पायस-भोजन जिसे खाकर तथागत ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि लाभ किया दूसरा तुम्हारा भोजन, जिसे खाकर तथागत ने महापरिनिर्वाण लाभ किया। यह दोनों दिनों का अन्न-दान सम फल-प्रद और समान मुक्ति-प्रद है। इस भोजन-दान से चुन्द को उत्तम जन्म लाभ करने का फल प्राप्त हुआ है। यश-प्रद फल प्राप्त हुआ है। दीर्घायु-फल प्राप्त हुआ है। आनन्द ! इस प्रकार कहकर चुन्द के अनुताप को दूर करना।"

मल्लों के शालवन में अंतिम शयनासन

इसके बाद भगवान् ने आनन्द से कहा—"आओ आनन्द ! चलें, अब हम लोग हिरण्यवती नदी के उस पार कुशीनगर के समीप मल्लों के शालवन में चलें।" आनन्द ने "जो आज्ञा" कहकर सम्मति प्रकट की। इसके बाद भगवान् बहुसंख्यक भिक्षुओं के साथ हिरण्यवती नदी को पार कर कुशीनगर के समीप मल्लों के शालवन में गए वहाँ पहुँचकर भगवान् ने आनन्द से कहा "आनन्द ! उस युग्म शाल भूमि पर वृक्ष के बीच में उत्तर ओर सिरहाना करके चीवर बिछा दो, हम क्लांत हो गए हैं, शयन करेंगे।" आनन्द ने "जो आज्ञा" कहकर उसी प्रकार से बिछौना बिछा दिया। तब भगवान् दक्षिण करवट से सिंह-शयन की तरह एक पैर पर दूसरा पैर रखकर शयन करके स्मृतिवान् और सम्प्रज्ञात-भाव में रहकर विश्राम करने लगे। इसी समय युग्म शाल वृक्षों में अकाल ही में खूब फूले हुए पुष्प थे वह और अकाल-भव होकर भगवान् के शरीर पर चारों ओर बिछ-से गए। इस पुष्प और गंध-वृष्टि से भगवान् और उनके चारों ओर की भूमि ढककर और भी अलौकिक शोभा को प्राप्त हुई।

इस समय भगवान् ने आनन्द से कहा "आनन्द ! देखो, इन युग्म शाल-वृक्षों में असमय ही फूल फूले हैं और तथागत के शरीर पर बरस रहे हैं। परंतु हे आनंद ! इसी प्रकार मनुष्य के द्वारा पूजा प्रतिष्ठा किये जाने पर भी तथागत का यथार्थ सत्कार करना नहीं हो सकता और न इससे उनकी यथार्थ श्रेष्ठता स्वीकार करके उचित सम्मान, पूजा और आराधना करना ही हो सकता है। किंतु आनंद ! यदि कोई भिक्षु भिक्षुणी, उपासक या उपासिका तथागत के धर्म के अनुशासन के अनुसार विशुद्ध जीवन यापन करे, उसके अनुसार आचरण करे, तो वही तथागत का यथार्थ सत्कार करता है और यही उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार करके उनका उचित सम्मान, पूजा और आराधना करता-

है। इसलिये आनंद! हमारे धर्मानुशासन के अनुसार अपना विशुद्ध जीवन यापन करो और आचरण करो तथा दूसरों को भी यही शिक्षा दो।"

जीवन की अंतिम घड़ियाँ

उस समय आयुष्मान् **उपवान** भगवान् के सामने खड़े हुए उनको पंखा झल रहे थे। भगवान् ने उनसे कहा—"उपवान! तुम यहाँ से हट जाओ, हमारे सामने मत खड़े रहो।" भगवान् की यह बात आनंद को न रुची। उन्होंने अपने मन में यह समझा कि अंतिम समय में भगवान् उपवान पर कहीं असंतुष्ट तो नहीं हो गए। अतएव आनंद ने भगवान् के निकट प्रकट रूप से निवेदन किया—"भगवान्! यह उपवान बहुकाल से भगवान् का सेवक और छाया की भाँति अनुगामी रहा है, फिर किस कारण भगवान् उस पर असंतुष्ट हो गए?"

भगवान् बोले—"आनंद! तथागत के दर्शन के लिये लोग आ रहे हैं। बहुकाल के बाद तथागत इस पृथ्वी पर आते हैं और आज ही रात्रि के शेष प्रहर में वह परिनिर्वृत्त होंगे। यह एक महत् प्रभावशाली भिक्षु तथागत के सामने खड़े उनको आच्छादन किए हुए हैं, इस कारण लोग तथागत् के अंतिम दर्शन नहीं कर सकते। आनंद! इसी कारण हमने उपवान को सामने से हटा दिया। हम उससे असंतुष्ट नहीं हैं।"

इतना कहकर भगवान् फिर नाना मनुष्यों के विषय में चर्चा करते हुए बोले—"आनंद! पृथ्वी पर जो मनुष्य पार्थिव भावापन्न हैं, वे केश बिखराए, हाथ फैलाए और गिरे हुए पेड़ की भाँति पृथ्वी पर लोटते हुए क्रंदन कर रहे हैं कि अति शीघ्र भगवान् परिनिर्वृत्त होंगे। अति शीघ्र **सुगत** लोक चक्षु से अंतर्द्धान हो जायँगे। परंतु आनंद! इन मनुष्यों में जो वीतराग हैं, वे स्मृतिमान् और संप्रज्ञात-भाव से तथागत के दर्शन कर रहे हैं। वे लोग जानते हैं कि सभी उत्पन्न होने

वाली वस्तुओं का नाश और संयोग होने वाली वस्तुओं का वियोग होना है। इस कारण तथागत का शरीर भी अनित्य है और इसका चिरस्थायी होना असम्भव है।"

चार महातीर्थों की घोषणा

भगवान की बात सुनकर आनन्द बोले—"भगवन! अब तक महानुभाव भिक्षु लोग नाना स्थानों में वर्षावास करके वर्षा के अन्त में भगवान के दर्शनों के लिए भगवान के निकट आते थे और भगवान के साथ रहने वाले हम लोग उन्हे आदर से लेते तथा उन दूर-दूर देशों से आये हुए महानुभाव भिक्षुगणों का दर्शन लाभ करते थे। समागत भिक्षुगण भगवान के श्रीमुख की वाणी श्रवणकर भगवान को प्रणाम-वदना आदि करके पूजन करते थे। अब भगवान के न रहने पर महानुभाव भिक्षुगण भी नहीं आवेंगे और हम लोग भी उनके दर्शन नहीं पा सकेंगे। अब भगवान के भिक्षु-शिष्यों के समागम होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकेगा।"

इस प्रकार आनन्द की दुःखित वाणी को सुनकर परम कारुणिक भगवान बोले—"आनन्द! हमारे बाद भी तुम लोगों के समागम और आलाप के लिए चार मुख्य स्थान रहेंगे। वह चारों स्थान कौन से हैं? (१) तथागत के जन्म का स्थान लुम्बिनी (२) तथागत के सम्यक संबोधि लाभ करने का स्थान बुद्धगया, (३) तथागत के सर्व प्रथम धर्म-चक्र-प्रवर्तन का स्थान वाराणसी का मृगदाव और (४) तथागत के परिनिर्वाण का स्थान कुशीनगर। आनन्द! इन सब स्थानों में श्रद्धावान भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक उपासिकागण आवेंगे और स्मरण करके कहेंगे—इस स्थान में तथागत ने जन्म ग्रहण किया था, इस स्थान में तथागत ने सर्वश्रेष्ठ सम्यक सम्बोधि लाभ किया था, इस स्थान में तथागत ने अपने सर्वश्रेष्ठ धर्म का

पहले-पहल प्रचार किया था और इस स्थान में तथागत ने महापरिनिर्वाण लाभ किया था। ऐसा करना वैराग्यप्रद है।

अंत्येष्टि क्रिया के लिये आज्ञा

इसके बाद आनन्द ने अवसर देखकर भगवान से यह पूछा—"भगवन! आपकी मृत्यु के बाद हम लोग आपके शरीर की पूजा-सत्कार कैसे करेंगे?" भगवान बोले—"आनन्द! तुम इसकी चिन्ता न करो। तथागत की शरीर-पूजा से तुम बेपर्वाह रहो। तुम आनन्द, सदर्थ के लिए प्रयत्न करना, सार अर्थ के लिए उद्योग करना। सत्-अर्थ मे अप्रमादी, उद्योगी, आत्म सयमी हो विहरना। आनन्द! तथागत के शरीर की पूजा और सत्कार करने के लिए विशिष्ट मनुष्य यथेष्ट है। वे लोग तथागत के प्रति महान श्रद्धा रखते है और उनके शरीर की भी उपयुक्त श्रद्धा-सहित अन्त्येष्ठि पूजा करेंगे।"

आनन्द का शोक मोचन

इसके बाद आनन्द शालवन के एक आश्रम में जिसे राजाओं ने वहाँ बनवा रक्खा था, जाकर (कपिसीस) खूटी पकड़ खड़े हो रोने और कहने लगे— अभी हमें बहुत कुछ सीखना है, हमे अब अपने ही कार्य द्वारा निर्वाण लाभ करना होगा। शास्ता जो हम पर इतनी दया करते थे निर्वाण में जा रहे हैं। अब हम कैसे क्या करेंगे?"

उसी समय भगवान ने भिक्षुओं से पूछा— आनन्द कहाँ है?" उन लोगों ने कहा— भगवन! विहार के भीतर दीवाल पकड़कर खड़े रो रहे है।" भगवान ने एक भिक्षु को भेजा कि आनन्द को बुला लाओ। भिक्षु आनन्द को बुला लाया। आनन्द उस भिक्षु के साथ आकर भगवान को अभिवादन करके एक ओर बैठ गये। भगवान आनन्द को देखकर बोले— आनन्द! तुम किसी प्रकार का शोक और विलाप न करो हमने तुमको पहले ही समझा दिया है कि सभी प्रिय और मनोहर वस्तुओं से एक दिन हमारा सम्पर्क छूट जायगा। जो

वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं और जिन्होंने संस्कार लाभ किया है, वे सब क्षणिक और नश्वर हैं। तब यह कैसे संभव हो सकता है कि देहधारी मनुष्य का शरीर नष्ट न हो? यह अनिवार्य है। तथागत का शरीर भी उत्पन्नवान है, अत क्षय को प्राप्त होगा। यह बात अन्यथा नहीं हो सकती। आनन्द! तुम दीर्घकाल से तथागत के आज्ञाकारी रहे हो और प्रेम के सहित हमारे हित और हमें सुखी रखने के लिए तुमने अपनी मन वाणी और काय के द्वारा हमारी अमित और असीम सेवा की है। आनन्द! तुमने ऐसा करके असीम पुण्य का संचय किया है। हे आनन्द! अब तुम तीव्र साधन करो "बहुत शीघ्र आश्रवों से मुक्त हो जाओगे।"

आनन्द के गुण

इसके बाद भगवान् भिक्षु-संघ को संबोधन करके बोले—भिक्षुओ! आनन्द बड़े पंडित और मेधावी हैं—यह स्वयं अपने लिए तथागत के पास उपस्थित होकर दर्शन करने के उपयुक्त समय को भली भाँति जानते हैं और दूसरे भिक्षु-भिक्षुणी लोगों को तथागत के सम्मुख उपस्थित होकर दर्शन करने के उपयुक्त समय को भली भाँति जानते हैं तथा उपासक उपासिकाओं, राजा-राजमंत्रीगणों और दूसरे धर्म-शिक्षकों एवं उनके शिष्यों को भी तथागत के सम्मुख उपस्थित होकर दर्शन करने के उपयुक्त समय को भली भाँति जानते हैं। हे भिक्षुगण! आनन्द में और भी अद्भुत गुण यह है कि यदि कोई भिक्षु-मंडली, भिक्षुणी-मंडली, उपासक-मंडली या उपासिका-मंडली आनन्द के दर्शन के लिए आती है तो आनन्द का दर्शन करके बहुत प्रीति करती और प्रसन्न होती है। यदि आनन्द उन लोगों को कुछ उपदेश प्रदान करते हैं तो उनको सुनकर वह लोग बड़े प्रीतिमन और प्रसन्न होते हैं और यदि आनन्द कुछ न कहकर चुप बैठे रहे तो वह लोग बड़े दुःखित होते हैं।"

कुशीनगर का पूर्व-वृत्त वर्णन

भगवान् की यह बात समाप्त होने पर आनन्द ने कहा—भगवन्! यह कुशीनगर एक वन वेष्टित क्षुद्र नगर है, आप यहाँ पर परिनिवृत्त न हों। भगवन! दूसरे अनेक महानगर हैं। जैसे चंपा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत (अयोध्या), कौशाम्बी और वाराणसी इत्यादि। इनमें से यथारुचि किसी जगह भगवान परिनिवृत्त हों। इन सब स्थानों में बहुत से महाशाल (महाधनी) क्षत्रिय, ब्राह्मण और गृहपति वास करते हैं और वे लोग तथागत के भक्त हैं। इस कारण वे तथागत के शरीर का उपयुक्त सम्मान और सत्कार करेंगे। अत. इस क्षुद्र जंगली नगर में परिनिर्वाण को न प्राप्त करें।

भगवान ने कहा—आनन्द! ऐसा मत कहो कि कुशीनगर वन-वेष्टित क्षुद्र नगर है। तुम्हें मालूम नहीं, पूर्व-काल में महासुदर्शन नामक एक राजा थे। वह बड़े धार्मिक राजा थे और सदैव धर्मानुसार राज्य शासन करते थे। उन्होंने चारों ओर जा करके धर्म और न्याय का राज्य स्थापित किया था। वह धर्मानुसार प्रजागणों की रक्षा करने वाले राजा सप्तरत्न के अधीश्वर थे। यह कुसीनारा उन्हीं महाराज महासुदर्शन की कुशावती राजधानी थी। आनन्द! इस कुशावती नगरी का विस्तार पूर्व से पश्चिम तक १२ योजन और उत्तर से दक्षिण तक ७ योजन था। आनन्द! जिस प्रकार देवताओं की अलकनंदा नामक राजधानी समृद्ध महजनाकीर्ण और सब सुखों की आकार है, उसी प्रकार यह कुशावती राजधानी भी महासमृद्धिशाली और हर प्रकार के सुख भोगों से पूर्ण तथा बहुजनों से आकीर्ण थी। इस कुशा-वती नगरी में रात-दिन हाथियों के शब्द, घोड़ों के शब्द, रथों के शब्द, भेरी का शब्द, मृदंग का शब्द, गीत का शब्द, वीणा का शब्द, तालवृन्त का शब्द और खाइये-पीजिये इत्यादि इस प्रकार के शब्द से शून्य न होती थी।

कुशीनगर के मल्लों के साथ

इस प्रकार कुशावती नगरी का वर्णन करने के बाद भगवान् ने आनन्द से कहा–आनन्द! तुम कुसीनारा में जाओ और मल्लगणों को खबर दो कि वाशिष्ठगण! आज रात्रि के पिछले प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। इसलिये तुम लोग प्रसन्नता-पूर्वक आओ जिसमें तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े कि हम लोगों की राज्य-भूमि में ही तथागत का परिनिर्वाण हुआ, फिर भी हम उनका अन्तिम दर्शन न कर सके।

भगवान् की यह बात सुन "जो आज्ञा" कहकर आनन्द चीवर-वेष्टित हो भिक्षापात्र हाथ में ले तथा संग में एक और भिक्षु को लेकर कुशीनगर को गए। उस समय कुसीनारा वासी मल्ल लोग किसी विशेष कार्य के लिये मंत्रणा गृह (संस्था-गृह) में एकत्रित हुए थे। आनन्द भी उसी मंत्रणागृह में उपस्थित हुऐ और बोले—वाशिष्ठगण! आज रात्रि के पिछले प्रहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। इससे वाशिष्ठों! तुम लोग आओ और उनके दर्शन करो, जिसमें तुम्हें पीछे से पछताना न पड़े कि हमारी राज्य सीमा में ही तथागत का परि-निर्वाण हुआ, फिर भी हम लोग उनका अन्तिम दर्शन न कर सके!

आनन्द की यह बात सुनकर मल्ल, मल्लयुवकगण, मल्लवधू और मल्ल-कन्याएं बड़े क्लेशित, दुःखित और शोकार्त हुए। कोई-कोई केश बिखराकर, कोई हाथ फैलाकर, कोई भूमि में गिरकर लोटते हुए रोने लगे। सब यही कहकर विलाप करते थे कि भगवान् बहुत जल्द निर्वाण लाभ करेंगे, हम लोगों के चक्षु से बहुत जल्दी अंतर्द्धान हो जायँगे। बहुत जल्दी हम लोगों को छोड़कर चले जायँगे। इस प्रकार कुछ देर तक विलाप-रुदन करने के बाद सब लोग धैर्य का अवलम्बन करके उसी खिन्नित और शोकार्त दशा में भगवान् के दर्शन के लिये शालवन की ओर चले और वहाँ जाकर आनन्द के निकट

उपस्थित हुए। आनन्द ने देखा कि यदि इन मल्लों की एक एक करके अलग-अलग भगवान् की वदना करने को कहें, तो सब मल्लों के भगवान् की वदना करने में ही रात्रि समाप्त हो जायगी अतएव मल्लों के एक-एक परिवार को एकत्र करके एक साथ ही भगवान् की वंदना करावेंगे और कहेंगे—भगवान्! अमुक नामक म अपने परिवार-सहित भगवान् के पाद-पद्मों पर मस्तक रखकर वदन करता है।

इस प्रकार मन में विचारकर आनन्द ने मल्लों के एक एक परिवा को एकत्र करके उसके विषय में परिचय देते हुए भगवान् के पाद-पद् की वंदना कराई। इस प्रकार आनन्द के द्वारा मल्लों के भगवान् व पूजा वंदना कराने में रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया।

परिव्राजक सुभद्र की प्रव्रज्या

उस समय **सुभद्र** नामक एक परिव्राजक कुशीनगर में वास करत था। उसने जब सुना कि आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में महाश्रमण गौतम का परिनिर्वाण होगा, तो उसके मन में चिंता हुई कि हमने प्राचीन और वृद्ध परिव्राजकों, आचार्यों और शिक्षक लोगों को य कहते सुना है कि कभी किसी काल में सम्यक् संबुद्ध अर्हत् तथागत लोग उत्पन्न हुआ करते हैं, सो उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत का आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में परिनिर्वाण होगा और हमारे मन में धर्म के विषय में कुछ सशय है। दृढ विश्वास है कि महाश्रमण गौतम अपन निर्मल उपदेश के द्वारा हमारे सशय को दूर कर देंगे। अतएव हमें उचित है कि हम चल कर तथागत के दर्शन करें, ऐसा विचार कर परिव्राजक सुभद्र मल्लोंके शालवन में पहुँचकर आनन्द के निकट उपस्थित हुए और आनन्द से बोले— हमने प्राचीन और वृद्ध आचार्य प्राचार्य परिव्राजकों और शिक्षकों से सुना है कि कभी किसी काल में सम्यक्सम्बुद्ध इस पृथ्वी पर आते हैं और हमें ज्ञात हुआ है कि वह भगवान् तथागत

आज रात्रि के शेष भाग में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। हमें धर्म के विषय में कुछ संदेह है, सो हम उनका दर्शन करके अपने सन्देह को दूर करना चाहते हैं। इसलिये हम दर्शन के योग्य प्रार्थी हैं, हमको भगवान् का दर्शन मिलना चाहिये।"

इस बात को सुनकर आनन्द सुभद्र परिव्राजक से बोले—"नहीं सुभद्र! अब नहीं, तथागत को अब कष्ट मत दो। भगवान् निर्वाण-शय्या पर हैं और अत्यन्त क्लांत हैं।" किन्तु दूसरी एवं तीसरी बार भी सुभद्र परिव्राजक ने फिर वही प्रार्थना की।

भगवान् ने आनन्द और परिव्राजक सुभद्र के परस्पर प्रश्नोत्तर को सुन लिया। जो महापुरुष ४५ वर्ष तक अखिन्न चित्त से जिज्ञासुओं के लिये अमृत वर्षा करते हुये सहायक हुआ हो, वह अन्तिम समय में अपनी सहज करुणा को कैसे भूल सकता है? भगवान् ने आनन्द को बुलाकर कहा—"आनन्द! सुभद्र परिव्राजक को हमारे पास आने से मत रोको। सुभद्र तथागत का दर्शन लाभ कर सकता है। आनन्द! सुभद्र हमसे जो कुछ पूछेगा, वह केवल सत्य जानने की इच्छा से ही पूछेगा, वह हमें कष्ट देने के अभिप्राय से नहीं पूछेगा। उसके पूछने पर जो कुछ हम समझा देंगे, वह बहुत जल्द समझ जायगा"

यह सुनकर आनन्द ने सुभद्र के पास जाकर कहा—सुभद्र अब तुम भगवान् के निकट जा सकते हो। भगवान् तुमको बुला रहे हैं।'

तदनन्तर परिव्राजक सुभद्र भगवान् के निकट जा अभिवादन कर भगवान् के एक ओर बैठ गये और बोले—"गौतम! इस समय अनेक श्रमण ब्राह्मण संघी-गणी और तीर्थंकर लोग हैं, जो बहुतों के शिक्षक आचार्य यशस्वी, शास्त्रकार, बहुजनसमादरित और अग्रगण्य हैं! यथा पूर्ण काश्यप, मस्करीगोशाल, अजितकेशकंबल प्रकुट कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्र और निर्ग्रंथनाथ पुत्र। भगवान्! क्या वह सभी लोग अपने दावा (प्रतिज्ञा) को वैसा जानते हैं या सभी वैसा नहीं जानते या कोई कोई वैसा जानते, कोई-कोई वैसा नहीं जानते हैं।"

"नहा सुभद्र ! जाने दो-वह सभी अपने दावा को ······। सुभद्र ! तुम्हें धर्म का उपदेश करता हूँ। सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो।

सुभद्र ! जिस धर्म-विनय में अष्टागिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता वहाँ स्रोतापन्न (प्रथम श्रमण), सकृदागामी (द्वितीय श्रमण), अनागामी (तृतीय श्रमण) और अर्हत् (चतुर्थ श्रमण) भी उपलब्ध नहीं होता। सुभद्र ! यहाँ यदि भिक्षु ठीक से विहार करें तो लोक अर्हतों (जीवन मुक्तों) से शून्य न होवे"।

सुभद्र ! अपनी उन्तीस वर्ष की अवस्था में कुशल गवेशी हो जो मैं प्रव्रजित हुआ। तब से इक्यावन वर्ष हुए। न्याय-धर्म (आर्य सत्य) के देश को भी देखने वाला यहाँ से बाहर कोई नहीं है।

भगवान् की बात सुनकर परिव्राजक सुभद्र बोले—भगवन् ! आपके श्रीमुख से धर्मामृत श्रवण करके हमारे ज्ञान नेत्र खुल गए। हमारा सदिग्ध और मुमूर्षु चित्त शात और सचेत हो गया। आपकी कृपा से हम छिपे हुए भेद को समझकर कृतार्थ हुए। हम आपकी शरण लेते हैं, धर्म और सघ की शरण लेते हैं। हमको आप अपने शिष्यों में ग्रहण कीजिए। आज से हम भगवान् की शरणापन्न हुए। मुझे भगवान् के पास प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।

इस प्रकार सुभद्र की बात सुनकर भगवान बोले—हे सुभद्र ! जब कोई दूसरे धर्म का माननेवाला व्यक्ति मेरे इस धर्म में आकर प्रव्रज्या और उपसपदा ग्रहण करने की इच्छा करता है, तो वह पहले चार महीने की शिक्षा और परीक्षा के बाद उस शिक्षार्थी को आरब्ध-चित्त जित-चित्त भिक्षु लोग प्रव्रज्या और उपसपदा प्रदान करते हैं। यद्यपि यह बात ठीक है, तथापि भिक्षु होने की योग्यता में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में बहुत प्रभेद होता है। इस विषय को हम जानते हैं।

भगवान की बात सुनकर सुभद्र बोले—भगवन् ! यदि कोई व्यक्ति दूसरे धर्म या विनय से आकर आपके इस लोकोत्तरीय धर्म में प्रव्रज्या

और उपसंपदा ग्रहण करके दीक्षित होना चाहे, तो उसे पहले चार महीने शिक्षाधीन रहना पड़ता है। बाद इस चार महीने के उस शिक्षार्थी व्यक्ति को जिन-चित्त भिक्षु लोग प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदान करते हैं। यदि वास्तव में यह बात है तो हम चार महीने तो क्या चार वर्ष शिक्षाधीन रहने को तैयार है। इसके बाद जित-चित्त भिक्षु लोग हमको प्रव्रज्या और उपसंपदा देकर भिक्षु धर्म में दीक्षित करें। हमको इसमें बड़ी प्रसन्नता है।

सुभद्र की बात सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और आनन्द को बुलाकर कहा—आनन्द ! सुभद्र को प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदान करो ! आनन्द ने जो आज्ञा कह कर सम्मति प्रकाश की।

परिव्राजक सुभद्र ने आनन्द से कहा—आप लोग अत्यंत सौभाग्यमान् हैं, जो आप इस प्रकार के शास्ता के साथ रहते हैं और उनके कर-कमलों से अभिषिक्त हुए हैं।

आनन्द ने कहा—भाई सुभद्र ! तुम भी तो आज भगवान् के अंतिम दर्शन लाभ करके उनके सामने उन्हीं के कर-कमलों से अभिषिक्त हो रहे हो। यह क्या थोड़े सौभाग्य की बात है।

तदनंतर परिव्राजक सुभद्र ने भगवान् से प्रव्रज्या और उपसंपदा लाभ की। भिक्षु धर्म में दीक्षित होने के बाद से ही सुभद्र एकाकी, अप्रमत्त भाव और परम उत्साह के साथ दृढ़प्रतिज्ञ होकर विचरण करने लगे। मनुष्य लोग जिस परम पद के लिये सब प्रकार के सुख और घरबार त्यागकर संन्यासी होते हैं, सुभद्र ने बहुत जल्द उस परम श्रेष्ठ अर्हत्पद को लाभ किया। यह सुभद्र भगवान् के अंतिम साक्षात् शिष्य थे।

आनन्द और भिक्षुसंघ को अंतिम उपदेश

तब भगवान् ने आयुष्मान आनन्द से कहा—आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—कि अतीत शास्ता (=चले गये गुरु) का यह

प्रवचन अर्थात् उपदेश है। अब हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द! इसे ऐसा मत समझना। हमने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, हमारे वाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) हैं।

आनन्द! जैसे आज कल भिक्षु एक दूसरे को **आवुस** कहकर पुकारते हैं, हमारे वाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनन्द! स्थविरतर (उपसम्पदा प्रव्रज्या में अधिक दिन का) भिक्षु अपने से (प्रव्रज्या) में नये भिक्षु को नाम से या गोत्र से या आवुस कहकर पुकारें।

आनन्द! इच्छा होने पर सघ हमारे वाद क्षुद्र अनुक्षुद्र (छोटे-छोटे) शिक्षापदों को छोड सकते हैं तथा आनन्द! हमारे वाद छन्न भिक्षु को ब्रह्म दण्ड देना चाहिये।

आनन्द ने पूछा—भगवान्! ब्रह्म दड किसे कहते हैं?

भगवान् ने कहा—छन्न-भिक्षु अपनी इच्छानुसार चाहे जो कहे परतु कोई भिक्षु उससे वातचीत न करे और न उसको कुछ अनुशासन करें।

इसके वाद भगवान् सव भिक्षु संघ को सवोधन करके वोले--भिक्षुओं! यदि तुम लोगो में से किसी को भी बुद्ध धर्म, सघ और मार्ग या प्रतिपद (विधान) के विषय में कोई संदेह या दुविधा हो, तो हमसे पूछ सकते हो। जिसमें तुम लोगों को पीछे पश्चाताप करना न पड़े।

भगवान् की यह बात सुनकर सव भिक्षु लोग मौन भाव से वैठे रहे। भगवान् ने फिर वात को दोहराया। भिक्षु लोग फिर उसी प्रकार तूष्णी भाव से वैठे रहे। भगवान ने फिर दूसरी और तीसरी वार भी यही वात कही। तीसर वार भी भगवान् की वात सुन सव भिक्षु लोग नीरव वैठे रहे।

भगवान् ने कहा—"हम यह वात तीन वार कह चुके हैं कि यदि भिक्षु-संघ में से किसी को भी बुद्ध धर्म, सघ और मार्ग या प्रतिपद के

विषय में कोई संदेह या द्विविधा हो तो हमसे पूछ लो, जिसमें तुम लोगों को पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े। परन्तु सब भिक्षु लोग तूष्णी भाव से बैठे हुए हैं। तो क्या यह बात तो नहीं है कि तुम लोग शास्ता के सम्भ्रम वश (आदर के कारण) कुछ नहीं कह रहे हो। यदि ऐसा हो तो आपस में एक दूसरे से कहकर जनाओ।"

भगवान् की इस बात को भी सुन कर भिक्षु लोग नीरव रहे।

इसके बाद आनन्द भगवान् को संबोधन करके बोले—"भगवान्! यह कैसी अद्भुत और आश्चर्यजनक बात है कि आप अपने इस भिक्षु-संघ से ऐसी बात करते हैं। हमारा यह दृढ विश्वास है कि इस भिक्षु संघ में ऐसा कोई भी नहीं है, जिसको बुद्ध, धर्म, सघ और मार्ग या प्रतिपद के विषय मे कुछ संदेह या द्विविधा हो।"

आनन्द की बात सुनकर भगवान् बोले—आनन्द! तुमने अपने दृढ विश्वास की जो बात कही है वह ठीक है और हम भी यह जानते हैं कि इस भिक्षु-संघ में ऐसा एक भी भिक्षु नहीं है जिसको कुछ सदेह हो। आनन्द! इन पाँच सौ भिक्षुओं के मध्य सबसे कनिष्ठ व्यक्ति भी स्रोतापन्न' निर्वाण के स्रोत्र में पड़ा हुआ है अर्थात् उसने दु:ख पूर्ण जन्म से अतीत स्थान को प्राप्त कर िया, है और यह निश्चय है कि वह संबोधि लाभ करेगा।

इस प्रकार भगवान् सबके मन के सदेह और दुविधा को दूर करके सतोष प्रदान करते हुए सब भिक्षुओं को सबोधन करके अपना अंतिम वाक्य बोले—"भिक्षुगण! सावधान होकर सुनो, समस्त सयोग और सयोग से उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं का वियोग और नाश अवश्य होता है। तुम लोग अप्रमत्त (सचेत) और एकाग्र-चित्र होकर अपने-अपने साधन को संपन्न करो, अपने लक्ष्य को लाभ करो।'

इस प्रकार ससार के सर्वोपरि महान् शिक्षक और महान् गुरु अपनी अंतिम अवस्था में अपने शिष्यों को सबसे अन्तिम उपदेश देकर मौन हो गए।

भगवान् का महापरिनिर्वाण

इसके बाद भगवान् प्रथम ध्यान से दूसरे ध्यान, दूसरे ध्यान से तीसरे ध्यान और तीसरे ध्यान से भगवान् ने चौथे ध्यान में प्रवेश किया। इसी चतुर्थ ध्यान के विसार-काल में भगवान् महापरि-निर्वाण को प्राप्त हुए

इस प्रकार से ससार के सबसे बडे महापुरुष, जगद्गुरु और महान् उपदेशक तथागत सम्यक सम्बुद्ध ने संसार को अपना आदर्श तथा कल्याण का सुपथ प्रदर्शन कराकर एव दुर्दशा पीड़ित जनता को शातिदायक सुगम सत्पथ बताकर ससार से अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी।

भगवान् के परिनिर्वृत्त होने पर अनिरुद्ध और आनन्द ने **अनित्यता** की भावना करते हुए भगवान् की स्तुति की और वहाँ जितने भिक्षु लोग उपस्थित थे, उनमें से जिनकी आसक्ति दूर नहीं हुई थी वह लोग अति विकल होकर विलाप करने लगे जो भिक्षु वीतराग थे अनासक्त थे, वह **स्मृतिवान** और **संप्रज्ञात भाव** से अवस्थित रहे और क्रदन करते हुए भिक्षुओं को समझाया कि "समस्त यौगिक और उत्पन्नवान् वस्तुएँ क्षणिक तथा अनित्य हैं, उनका नाश न हो यह असभव है।"

अनिरुद्ध सब भिक्षुओं को सबोधन करके बोले "हे बधुओ! अब शोक और दुख मत करो क्योंकि भगवान् पहले ही आप सब लोगों को ज्ञात करा गए हैं कि समस्त मनोरम और प्रिय वस्तुओं से हम पृथक् होंगे, उनसे सपर्क त्यागकर दूर हो जायेंगे। इसमे कोई सदेह नहीं जिसका जन्म हुआ है, जिसने शरीर धारण किया है, वह काल धर्म (मृत्यु) के अधीन है। इसके विरुद्ध कभी नहीं हो सकता। बधुओं! आप लोग शोक और दुख न कीजिए। रुदन न कीजिए, नहीं तो विज्ञ लोग हम लोगों पर हँसेंगे।"

आनन्द और अनिरुद्ध ने अवशिष्ट रात्रि इसी प्रकार धर्मालोचना करते हुए सबके साथ विताई।

सवेरा होते ही अनिरुद्ध ने आनन्द से कहा—बंधु ! कुशीनगर में जाकर मल्ल लोगों को खबर करो।

अनिरुद्ध की आज्ञानुसार आनन्द चीवर-वेष्टित हो, पिंडपात्र ग्रहण कर एक भिक्षु के साथ कुशीनगर गए। इस समय मल्लगण भगवान् की अंतिम अवस्था के विषय में विचार करने के लिये मन्त्रणा-गृह (संस्थागृह) में एकत्रित हुए थे। आनन्द उसी यन्त्रणा-गृह में उपस्थित होकर बोले—"हे वशिष्ठगण ! भगवान् महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। अब आप लोग जैसा उचित समझें, करें।"

आनन्द के मुख से यह बात निकलते ही बात की बात में सारे नगर में फैल गई। समस्त मल्ल, मल्ल-युवक, मल्ल-वधू और मल्ल-कन्याएँ अत्यत दुःखित होकर शोकनाद करने लगे। सारा राष्ट्र शोक सागर में डूब गया। सब के मुख पर यही था, "हा हत ! भगवान् अति शीघ्र महा-परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए, सुगत अति शीघ्र लोक चक्षु से अंतर्द्धान हो गए; हा दैव ! अब हम लोग क्या करेंगे ? अब हमें उस प्रकार का सदुपदेश देकर कौन शांत करेगा ? अब हमें कौन धैर्य प्रदान करेगा ! हाँ भगवान् ! अब आपकी वह करुणा हम लोगों को कहाँ मिलेगी ? आप हम लोगों को छोड़कर चले गए, अब हम आपको कैसे पायेंगे !"

मल्लों ने आयुष्मान आनन्द से पूछा—भन्ते, भगवान् के शरीर की पूजा-सत्कार कैसे और किस विधि से किया जाय।" आनन्द ने कहा—"हे वाशिष्ठो धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर का जिस प्रकार सत्कार किया जाता है, धर्म-चक्रवर्ती तथागत के शरीर का भी उसी प्रकार सत्कार करना चाहिए।" मल्लों ने पूछा—"भन्ते ! धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर का सत्कार किस प्रकार किया जाता है।" आनन्द बोले—"धार्मिक चक्रवर्ती राजा

के मृत शरीर को नए कपड़े द्वारा वेष्टित करते हैं। फिर धुनी हुई रुई से वेष्टित करते है और फिर उसे कपड़े से वेष्टित करते हैं और फिर धुनी हुई रुई से वेष्टित करते हैं। इसी प्रकार पाँच सौ बार दोनों चीजों से वेष्टित करते हैं। इसके बाद लोहे की सन्दूक में तेल भरकर मृत शरीर को उसमें रखकर बंद करते हैं। फिर सब प्रकार की सुगंधित वस्तुओं द्वारा चिता रखते है। और इस तरह धार्मिक चक्रवर्ती राजा के शव को रखकर दग्ध करते हैं। इसके बाद अस्थि-शेष को लेकर जहाँ चार प्रधान रास्ते मिलते हों, ऐसे चौरास्ते पर उसका स्तूप (समाधि) बनाते है। हे वाशिष्टो! इस प्रकार धार्मिक चक्रवर्ती राजा के मृत शरीर का अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है। वाशिष्टो! इस संसार में चार व्यक्ति ही स्तूप पाने के उपयुक्त होते हैं—(१) **सम्यक सम्बुद्ध**, (२) **प्रत्येक बुद्ध** जिन्होंने स्वयं संबोधि तो प्राप्त कर ली है किंतु उसका जगत् में प्रचार करके असंख्य प्राणियों का उद्धार नहीं कर सके, (३) **तथागत के श्रावक** शिष्य और (४) तथागत के धर्म का प्रचार करनेवाले राजा गण। हे वाशिष्टो! इन चारों व्यक्तियों का स्तूप बनवाने से क्या लाभ होता है? सुनो। वहाँ जाने पर यह स्मरण हो जाता है कि यह सम्यक् सम्बुद्ध तथागत का स्तूप है, जिन्होंने अपने जीवन में अमुक-अमुक से अमूल्य कार्य करके जगत् का हित-साधन किया था। इन बातों का स्मरण करके लोग शिक्षा लाभ करते हैं। इस प्रकार ये स्तूप सबको प्रसन्नता और शांति देकर सब का हित-साधन करने वाले होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक बुद्ध, बुद्ध श्रावक तथा धार्मिक चक्रवर्ती राजा के स्तूपों से भी लोग अमूल्य और पवित्र शिक्षा ग्रहण करके लाभ उठाते हैं।" वाशिष्टो। यह चार स्तूपार्ह हैं।

इसके अनन्तर धैर्य धारण कर मल्लगण अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्र, गंध, माला और पाँच सौ जोड़ा नवीन वस्त्र लेकर शालवन के उपवन में भगवान् तथागत के शरीर के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने चंदनादि सुगंधित पदार्थ और मालाओं से भगवान् के शरीर की

भक्तिभाव-पूर्वक पूजा करके वंदना की तथा अनेक प्रकार के बाजे बजा कर नृत्य और गीत के द्वारा भगवान् के शरीर का श्रद्धा-पूर्वक सम्मान किया तथा वस्त्रों का वितान तैयार करके उसे फूल और मालाओं से खूब सजाया। इस प्रकार करते-करते वह दिन व्यतीत हो गया। दूसरे दिन मल्ल लोगो ने फिर उसी प्रकार भगवान् के शरीर की गंध, माला, नृत्य, गीत आदि द्वारा पूजा और वंदना की। इसी प्रकार छ दिन तक वह लोग पूजा-वन्दना करके भगवान् के शरीर का सम्मान और सत्कार करते रहे। सातवें दिन मल्लों के आठ प्रधान नेताओं ने अपने-अपने शिरों को धोकर नए वस्त्र पहने और बोले—हम लोग भगवान के शरीर को उठाकर ले चलेंगे। किन्तु जब उठाने लगे, तो मिलकर उन आठों आदमियों को भी भगवान् के शरीर को उठाना असम्भव हो गया था।

मल्लों के सम्मिलित प्रयास करते ही उसी क्षण धूलि और जल-पूर्ण कुशीनगर के सब स्थान पुष्प वृष्टि से परिपूर्ण हो गए। इसके बाद कुशीनगर के मल्लगण गंध, माला और पुष्प आदिकों के द्वारा भगवान् के शरीर की पूजा और वन्दना करके नाना भाँति के बाजे बजाकर नृत्य गीत करते हुए भगवान के शरीर को अति श्रद्धा और सम्मान के सहित नगर के उत्तर ओर से ले जाकर, उत्तर द्वार को लाँघ-कर नगर के बीच में पहुँच और फिर वहाँ से पूर्व द्वार से निकल कर नगर के पूर्व दिशा में मल्लों के मुकुट बधन चैत्य नामक मन्दिर के पास ले जाकर रक्खा।

भगवान् के शरीर का अभूतपूर्व दाह कर्म

इधर यह हो रहा था, उधर भगवान् के एक परमप्रिय शिष्य आयुष्मान महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के महान संघ के साथ पावा से कुशीनगर की ओर आते हुए रास्ते से हटकर मार्ग में एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम कर रहे थे। इसी समय महाकाश्यप ने किदेखा

आजीवक सम्प्रदाय का एक सन्यासी कुशीनगर की ओर से स्वर्गीय मन्दार पुष्प हाथ में लिए पावा के रास्ते पर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस आजीवक को दूर से ही आते देख उस आजीवक से कहा—

"आवुस क्या हमारे शास्ता को भी जानते हो?"

"हाँ, आवुस! जानता हूँ, श्रमण गौतम को परिनिर्वृत्त हुए आज एक सप्ताह हो गया, मैंने यह मंदार पुष्प वहीं से पाया है।"

यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे उनमें से कोई-कोई रोने लगे। उस समय सुभद्र नामक एक भिक्षु वृद्धावस्था में प्रव्रजित हो परिषद में बैठा था। तब उस वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र ने उन भिक्षुओं से कहा—मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त हो गये हैं। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे—यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हे विहित नहीं है।" यही उनका रात-दिन का कहना था अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे सो नहीं करेंगे।

आयुष्मान् महाकाश्यप ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। भगवान् ने पहले ही कह दिया है कि सभी प्रियों, मनापों से जुदाई होती है, जो जात (उत्पन्न) भूत, कृत और संस्कृत धर्म है, वह नाश होने वाला है! हाय! वह नाश न हो।' यह सम्भव नहीं है।

महाकाश्यप का पाँच सौ भिक्षुओ सहित शव-दर्शन

इसी अवसर पर महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आ पहुँचे और चिता के निकट उपस्थित हो विधिपूर्वक कंधे पर चीवर कर, दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके तीन बार चिता की प्रदक्षिणा की और बारी-बारी से भगवान् के पादों पर मस्तक रखकर वंदना की। इस प्रकार जब महाकाश्यप और उनके पाँच सौ भिक्षुओं का वंदनादि

कार्य समाप्त हुआ तव भगवान् की चिता प्रज्वलित हो उठी और भगवान् के शरीर का दाह होने लगा। किन्तु कुछ ही क्षणों में भगवान का नश्वर शरीर केवल अस्थिमात्र शेष रह गया। जिस प्रकार घृत अथवा तेल जलने पर मसि या भस्म नहीं दिखाई पड़ती, उसी प्रकार भगवान के शरीर में मांस, स्नायु और ग्रंथि स्थान सब जल गया परन्तु मसि और भस्म नहीं पड़ा। केवल अस्थिमात्र अवशिष्ट रहा।

जब भगवान् का शरीर अच्छी तरह जल गया तब ठीक अवसर पर मेघ प्रादुर्भूत हो आकाश से भगवान् की चिता की अग्नि को बुझाया। इधर कुशीनगर के मल्ल लोगों ने भी विविध भाँति के सुगंधित जल द्वारा भगवान् के चितानल को बुझाया।

अस्थियों के लिये ७ राजाओं की चढ़ाई

इस प्रकार चिता ठंडी होने पर मल्ल लोगों ने भगवान् की अस्थियों का चयन करके उन्हें एक कुंभ में रखा और उस कुंभ को बडे सजाव सम्मान के साथ मन्त्रणा (सभा) गृह में ले जाकर स्थापित किया। फिर उसके चारों ओर बाणों और धनुषों से घेरकर दृढबंदी की दीवार-सी रचना करके एक सप्ताह तक नृत्य, गीत, पुष्पमाला और गंध-धूप आदि वस्तुओं द्वारा अस्थियों का सम्मान और पूजा-वंदना करते रहे।

जब भगवान् बुद्ध के मल्लों की राजधानी कुशीगनर में परिनिर्वाण होने का समाचार चारों ओर फैला तब उसे सुनकर मगध सम्राट् महाराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य अल्लकप्प के बूलिय, रामग्राम के कोलिय और पावा के मल्लराज आदि सब क्षत्रिय गणों और राजवंशों ने अपने-अपने दूतों द्वारा भगवान् के अस्थि भाग को लेने के लिये कुशीनगर के मल्लराज के पास यह लिखकर भेजा— "भगवान् क्षत्रिय थे। हम भी क्षत्रिय हैं।

इसलिये उनके शरीर के अंश पर हमारा भी स्वत्व है और उनके शरीर का अस्थि भाग हम लोगों को मिलना चाहिए।"

इसी अवसर पर वैठ द्वीप के ब्राह्मणों ने भी अपने दूत के द्वारा भगवान् बुद्ध का शरीरांश प्राप्त करने के लिये कुशीनगर के मल्लराज को लिख भेजा—"हम लोग भगवान् पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखते थे, इस नाते हमें भी भगवान् का शरीरांश अवश्य मिलना चाहिए। हम लोग उस पर स्तूप निर्माण करके पूजा वंदनादि करेंगे।"

जब कुशीनगर के मल्लगणों ने देखा कि यह सब लोग भगवान के शरीर का अवशिष्ट अस्थि-भाग माँग रहे हैं, उन्होंने कहा—जो "कुछ हो, भगवान् बुद्ध ने हमारे राज्य क्षेत्र में परिनिर्वाण प्राप्त किया है। इसलिये उनके शरीर का अवशिष्ट भाग हम किसी को नहीं देगे।"

अस्थियों के आठ विभाग

जब कुशीनगर के मल्लों के इस इनकार की बात मगध, कौशाबी आदि के सब राजाओं ने सुनी तो वे लोग भगवान् के शरीर का अस्थि-भाग लेने के लिये अपनी-अपनी सेना लेकर कुशीनगर पर एकदम चढ आए और घोर सग्राम होने की संभावना उपस्थित हो गई। उस समय द्रोण नामक एक ब्राह्मण ने, जो भगवान् बुद्ध का बहुत बड़ा भक्त था, विचार किया कि बात की बात में घोर जनक्षयकारी युद्ध हुआ चाहता है अत उसने सब लोगों के बीच में खड़े होकर उच्चस्वर से उन सब गणों और राजाओं को सबोधन कर इस प्रकार कहा—

सुणन्तु भोन्तो मम एकवाक्यं,
अम्हाकं बुद्धो अहु खण्तिवादो।
नहि साधुयं उत्तक पुग्गलस्स,
सरीरभागे सिया सम्पहारो॥

सब्बेव भोन्तो सहित समग्गा,
सम्मोदमाना करोमट्ठभागे।
वित्थारिका होन्ति दिसासु थूपा,
बहूजना चक्खु मतो सन्ताति॥

हे क्षत्रिय वर्ग! आप लोग मेरी बात सुनिए। भगवान् बुद्ध शान्तिवादी थे। यह उचित नहीं है कि ऐसे महापुरुष की मृत्यु पर आप लोग घोर संग्राम मचावें। आप लोग सावधान होकर शान्ति धारण करें। मैं उनकी अस्थियों के आठ भाग किए देता हूँ। यह अच्छी बात है कि सब दिशाओं में उनकी धातु पर स्तूप बनवाए जायँ, जिनको देखकर सब चक्षुवान लोग प्रसन्न होगें।"

द्रोण की बात सुनकर उससे सहमत हो सब लोग शांति हुये। द्रोण ने भगवान बुद्ध के अस्थि-धातु के आठ भाग करके एक भाग कुशीनगर के मल्लों, पावा के मल्लों, वैशाली के लिच्छवियों, मगध समाट् वैदेही पुत्र अजातशत्रु, कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों अल्लकल्प के बुलियों और वेट-द्वीप के ब्राह्मणों को दिया। इस प्रकार बँटवारा होने के बाद पिप्पलिवन के मौर्य-क्षत्रियों का दून भी अस्नि-भाग के लेने के लिए आ पहूँचा तब द्रोण ने उसे समझा-बुझाकर चिना का अगार देकर विदा करके और उस कुम्भ (घडे) को जिसमे भगवान् की अस्थियाँ रक्खी थीं, सब लोगों से अपने लिए माँग लिया। द्रोण द्वारा इस प्रकार बँटवारा करके सबको शात कर देने के बाद सब भिक्षुओं ने एक स्वर होकर इस गाथा का गान किया—

देविन्दनागिन्द नरिन्द पूजितो
मनुस्सिन्द सेट्ठेहि तथैव पूजितो।
त वन्दथ पञ्जलिका भवित्वा
बुद्धो हवे कप्पसहेति दुल्लभो॥

देवराज, नागराज और श्रेष्ठ मनुष्यों के द्वारा पूजित भगवान् बुद्ध को हम लोग कृताजलि-पूर्वक वदना करते हैं क्योंकि सैकड़ों कल्पों के बाद भी इस प्रकार के भगवान् तथागत बुद्ध का जन्म होना दुर्लभ है।

ब्रह्मिन्द देविन्द नरिन्द-राज,
बोधि मबोधि करुणा-गुणगग्ग।
पञ्ञापदीप ज्वलितं जलत,
वन्दामि बुद्ध भव पार तिरणं॥

जो ब्रह्माधिपति, देवाधिपति, नरेन्द्राधिपति और जगत् में उत्तम बोधि (ज्ञान) लाभ करने तथा करुणा-गुण में सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसे प्रज्ञारूपी प्रदीप से आलोकित, जाज्वल्यमान, भवसागर से पार, भगवान् बुद्ध की मैं वदना करता हूँ।

अस्थियो पर ८ नगरो में स्तूप-निर्माण

द्रोणाचार्य के द्वारा युक्ति से शान्ति से तथागत के पूतास्थियों के सम भाग किये जाने पर (१) मगध के सम्राट् वैदेही-पुत्र महाराज अजातशत्रु ने राजगृह में, (२) लिच्छिवी लोगों ने वैशाली नगर में, (३) शाक्यों ने कपिलवस्तु में, (४) बुलियों ने अल्लकल्प में, (५) वेठ-द्वीप के ब्राह्मणों ने वेठ-द्वीप में, (६) कोलियों ने रामग्राम में, (७) पावा के मल्लों ने पावा में और (८) कुशीनगर के मल्लों ने कुशीनगर में भगवान् की अस्थियों को ले जाकर, अपने अपने यहाँ स्तूप निर्माण करके महोत्सव किया। पिप्पलिवन के मौर्य लोगों ने पिप्पली में भगवान् की चिता में अगारे पर स्तूप निर्माण करके महोत्सव मनाया और ब्राह्मण द्रोणाचार्य ने जिस कुंभ मे भगवान् की अस्थियाँ रक्खी थीं, उस पर स्तूप निर्माण करके महोत्सव मनाया। इस प्रकार आठ अस्थि-स्तूप, एक अगार स्तूप और एक कुंभ-स्तूप, सब दस स्तूप भिन्न-भिन्न स्थानों में भगवान् की स्मृति में बुद्ध परिनिर्माण के तुरन्त बाद बनाए गये।